श्रीअरविन्द कर्मधारा

जनवरी-फरवरी २०२२, श्रीअरविन्द - १५०वीं जयंती

श्रीअरविन्द कर्मधारा

श्रीअरविन्द आश्रम दिल्ली शाखा

की पत्रिका

जनवरी - फ़रवरी 2022

संस्थापक

श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर 'फकीर'

सम्पादन : डॉ. अपर्णा रॉय

विशेष परामर्श समिति

कु . तारा जौहर, विजया भारती,

ऑनलाइन पब्लिकेशन ऑफ

श्रीअरविन्द आश्रम, दिल्ली शाखा

(निःशुल्क उपलब्ध)

कृ पया सब्सक्राइब करें-

saakarmdhara@rediffmail.com

कार्यालय

श्रीअरविन्द आश्रम, दिल्ली-शाखा

श्रीअरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016

दूरभाषः 26567863, 26524810

आश्रम वेबसाइट

(www.sriaurobindoashram.net)

श्रीअरविंद

(अनुवाद रामधारी सिंह दिनकर)

चलता मेरा श्वास सूक्ष्म, लयपूर्ण धार में।
अंग-अंग पूरित महान् भागवत शक्ति से।
पान किया है मैंने दिव्य, अनन्त सुधा का,
जैसे कोई पिये सुरा दानव विराट की।

काल नाट्य मेरा, स्वप्नों का भव्य प्रदर्शन।
तन का प्रति कोशाणु प्रदीपित, भासमान है।
रंध्र-रंध्र में दीपित शुभ आनन्द-शिखाएं ।

सुख-सिहरित नाड़ियाँ देह की परिवर्तित हो।
कुल्याएँ बन गयीं दूधिया, दिव्य मोद की,
उतर सकें जिनमें होकर वह प्लावन-गति से,
जो गोचर से परे तत्त्व सबसे महान है।

अब अधीन मैं नहीं रुधिर के और मांस के,
न तो प्रकृति का दास, कुटिल जिसका शासन है।
फेंक-फेंक संकीर्ण पाश इन्द्रियाँ न मुझको
अब सकती हैं बाँध मोहमय आकर्षण में ।

मापहीन हो गया दृश्य; आत्मा के सम्मुख
अब न किसी भी ओर क्षितिज-रेखा है कोई ।
तन मेरा जीवित, प्रसन्न है यंत्र देव का ।
मेरी आत्मा अमर ज्योति का महासूर्य है।

ॐ आनन्दमयि चैतन्यमयि सत्यमयि परमे
श्रीअरविन्द कर्मधारा

प्रार्थना और ध्यान

हे माता ! हम प्रार्थना करते हैं कि भगवान का सत्य
हमारी सत्ता का सत्य बन जाए ।
हमारे समस्त कार्य उस सत्य को अभिव्यक्त करें ।
हमारे मन और हृदय उस सत्य के द्वारा परिचालित हों।
हममें जो निश्चेतन है वह भगवान की चेतना के प्रकाश
से आलोकित हो ।
हम उन्हीं के सत्य द्वारा जानना
उन्हीं के सत्य द्वारा कार्य करना
उन्हीं के सत्य में रहना सीखें ।
परम देवी भगवती से हम सबकी यही प्रार्थना है ।

-श्रीमाँ

विषय-सूची

क्रं. स.	रचना	पृष्ठ
1.	प्रार्थना और ध्यान	3
2.	नववर्ष के आगमन की प्रार्थना	5
3.	संपादकीय	7
4.	पद्मश्री तारा दी	8
5.	श्रीमाँ की घोषणा	10
6.	अभीप्सा	13
7.	ग्रहणशीलता	15
8.	श्री अरविंद का रचना कर्म	17
9.	पुनर्जन्म का महत्त्व	24
10.	स्वप्न	28
11.	मीरा का मर्यादा श्रेष्ठ	31
12.	दिव्य युद्ध	35
13.	सच्चा भारत : श्री माँ की अन्तर्दृष्टि	37
14.	क्षमा आदर्श	40
15.	योग का मार्ग	43
16.	आत्मसमर्पण (सरेंडर)	44
17.	रूपान्तरण (ट्रान्सफार्मेशन)	45
18.	आश्रम- गतिविधियाँ	46

नववर्ष के आगमन की प्रार्थना

12 जनवरी 1914

हे समस्त वरदानों के परमदाता प्रभु!

तुम ही इस जीवन को सार्थकता करते हो प्रदान,

बनाते हो इसे पवित्र, शुभ एवं महान्!

तुम ही हमारी नियति के स्वामी हो,

और हमारी अभीप्सा के एकमेव लक्ष्य हो।

तुम्हें समर्पित है इस नववर्ष का प्रथम मुहूर्त।

प्रभु! कृपा करो कि इस समर्पण द्वारा

गौरवान्वित हो उठे यह सकल वर्ष,

जो लोग तुम्हारी अभीप्सा करते हैं, वे तुम्हें ढूँढ़ लें,

और वे सब जो दुख झेलते हैं, नहीं जानते इसका निराकरण

वे अनुभव कर सकें कि उनकी तमोग्रस्त चेतना

की कठोरता को प्रतिपल तोड़ रहा है तुम्हारा प्रकाश

हे नाथ! मैं महान कृतज्ञता एवं असीम

भक्ति-भावना से नतमस्तक हूँ तुम्हारी कल्याणी

ज्योति के समक्ष और समस्त पृथ्वी की

ओर से मैं करती हूँ तुमसे नम्र निवेदन,

कि तुम अपने प्रेम एवं प्रकाश की पूर्ण बहुलता के साथ,

स्वयं को करो अधिकाधिक प्रकट एवं अभिव्यक्त।

तुम ही हमारे विचारों एवं भावनाओं के स्वामी बनो।

तुम ही सर्वस्व बनो हमारे सभी कर्मों एवं कार्यों के

क्योंकि तुम ही हो हमारी वास्तविकता के सच्चे स्वरुप।

तुमसे रहित यह जीवन असत्य एवं असहाय है,

तुमसे ही जीवन है, उल्लास है एवं प्रकाश है,

तुममें ही परमोच्च शन्ति का वास है।

-श्रीमाँ

संपादकीय

प्रिय पाठकगण,

नव वर्षाभिनन्दन के साथ कर्मधारा के नवीन अंक का आरंभ करते हुए पाठकों के साथ इस हर्षानुभूति को साझा करना चाहती हूँ कि श्रीमाँ की इच्छा को व्यावहारिक रूप देने के प्रयास हेतु 1971 में आरंभ की गई यह पत्रिका (श्री अरविन्द कर्मधारा) जो अपने पांच दशक पूरे कर चुकी है, आज श्री अरविंद के150वें जन्म जयंती वर्ष का समारोह में आप सबका अभिनंदन करती है । उल्लेखनीय है कि श्री अरविंद की जन्म शताब्दी के समय श्रीमाँ ने इच्छा जाहिर की थी कि श्री अरविंद की शिक्षा का भारत के कोने - कोने में प्रसार किया जाए ताकि उससे देश का जन - जन परचित हो सके, तदर्थ कई भाषाओं में पत्रिकाएं निकाली गई। अंग्रेजी भाषा हेतु पत्रिका का नाम स्वयं श्रीमाँ ने रखा था - Sri Aurobindo's action , जिसका हिन्दी अनुवाद - श्री अरविंद कर्मधारा तय हुआ। ये हर्ष की बात है कि इन पाँच दशकों में पत्रिका के मूल में छिपी श्री अरविन्द की शिक्षा से जन - जन को अवगत कराने की भावना और श्री माँ की प्रेरणा के प्रति ग्रहणशीलता निरंतर बनी रही । इस अंक में प्रस्तुत

कविवर दिनकर जी द्वारा श्री अरविन्द की कविता – ट्रांसफ़ोरमेशन

मापहीन हो गया दृश्य; आत्मा के सम्मुख

अब न किसी भी ओर क्षितिज-रेखा है कोई ।

तन मेरा जीवित, प्रसन्न है यंत्र देव का ।

मेरी आत्मा अमर ज्योति का महासूर्य है।

के अनुवाद में उनके जीवन दर्शन के प्रति कवि की निष्ठा स्पष्ट परिलक्षित होती है। इसके साथ ही हम सभी को विदित है कि श्री अरविंद की 150 वीं जन्म- जयंती के इस वर्ष में किस प्रकार सम्पूर्ण वातावरण में, श्रीअरविन्द और श्री माँ की चेतना का प्रसार करने वाली घटनाएं घटित हो रही हैं। वो चाहे श्री अरविंद के महान कार्य के प्रति भारत सरकार द्वारा अखिल भारतीय स्तर पर प्रदर्शित जागरूकता हो अथवा श्री अरविंद आश्रम दिल्ली शाखा के माध्यम से कर्मयोग का नेतृत्व करती सुश्री तारा जौहर उर्फ हम सबकी तारा दीदी को सम्मानित करते हुए श्री अरविंद के योग पथ को सार्वजनिक मान्यता प्रदान किया जाना। वर्ष 2022 का प्रथम अंक आपके समक्ष प्रस्तुत करने के साथ ही पुनः अनुरोध है कि हमें विज्ञ पाठकों से पत्रिका योग्य विषय सामग्री के संगठन में मौलिक रचनाओं (कविता - लेख , कथा साहित्य) अनुभूतियाँ अथवा संस्मरणों की प्रतीक्षा है । पत्रिका आरंभ करने के मूल में श्रीमां की इच्छा एवं प्रेरणा है , तथा उद्देश्य श्री अरविन्द और श्रीमों के ज्ञान का प्रकाश देश के कोने कोने में पहुँचाना है । इस कार्य में हम सबको एकजुट होकर प्रयास करना है , आप सभी के सहयोग की हमें अपेक्षा है । आपके अमूल्य सुझावों का स्वागत है ।

शुभेच्छा सहित

- अपर्णा

पद्मश्री तारा दीदी

दीदी

सुश्री तारा जौहर, जिन्हें हम तारा दीदी या सिर्फ दीदी के स्नेहपूर्ण सम्बोधन से जानते हैं, त्याग पूर्ण जीवन, निःस्वार्थ सेवा, समर्पित भावना, सच्ची लगन, प्रेम एवं स्नेह की सर्वथा जीवंत प्रतिमूर्ति हैं। ऐसी स्नेहमयी विभूति को भारत सरकार द्वारा पद्मश्री से सम्मानित किया जाना, उनके योगदान को एक व्यापक मान्यता प्रदान करता है। यह हम सब के लिए गौरवपूर्ण क्षण है । तारा दीदी हमारे लिए किसी परिचय की मोहताज नहीं हैं, फिर भी उनके बारे में कुछ पंक्तियाँ लिखना जैसे अपने को सुकून देने जैसा है।

तारा दीदी श्रीमाँ की प्रेरणा से अपने पिता श्री सुरेंद्रनाथ जौहर द्वारा स्थापित श्रीअरविंद आश्रम – दिल्ली शाखा की प्रमुख संचालिका हैं। उनके पिता, स्वर्गीय श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर, श्रीअरविंद एवं श्रीमाँ के अनन्य अनुयायियों में से एक थे। उन्होंने अपना तन, मन, धन सर्वस्व श्रीमाँ के चरणों में अर्पित कर दिया था। ऐसे महान आत्मा की सुपुत्री का जीवन भी श्रीमाँ को समर्पित रहा है। श्रीमाँ के संरक्षण, मार्ग दर्शन और प्रेमपूर्ण वातावरण में श्री अरविंद आश्रम, पांडिचेरी में तारा दीदी पली-बढ़ीं। दिल्ली आने के पहले दशकों तक श्रीमाँ के साथ उनका एक अंतरंग संबंध रहा।

“द मदर्स इंटरनेशनल स्कूल” की स्थापना जिसे देश के बेहतरीन शैक्षणिक संस्थानों में से एक माना जाता है, की स्थापना भी श्री सुरेंद्रनाथ जौहर जी द्वारा की गई थी, उसे अपने अनुभव से सींचने तथा आगे बढ़ाने का काम तारा दीदी ने किया। श्रीअरविंद आश्रम (दिल्ली शाखा) के प्रांगण में ही स्थापित मीराम्बिका फ्री प्रोग्रेस स्कूल के माध्यम से छोटे बच्चों की शिक्षा में आध्यात्मिक दृष्टिकोण को अपनाने के अग्रणी प्रयासों के लिए तारा दीदी को राष्ट्रीय स्तर पर पहचान प्राप्त है। 1980 के दशक से, प्रत्येक कार्य में सबसे आगे रह कर एक मिसाल प्रस्तुत करने वाली कर्मठ तारा दीदी ने कई राज्यों में हज़ारों ग्रामीण युवाओं के जीवन को “व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम” के अंतर्गत संवारा है। उनका यह प्रयास निरंतर जारी है।

तारा दीदी ने हिमालयी क्षेत्र में भी महर्षि अरवींद तथा श्रीमाँ के जीवन-दर्शन तथा शिक्षा को आधार बनाकर आध्यात्मिक केंद्र स्थापित किए हैं। जो व्यक्तिगत और सामूहिक साधना के लिए सभी पंथों के साधकों का स्वागत करते हैं। इसके साथ-साथ युवाओं, बच्चों को विशेष प्रशिक्षण तथा निकटवर्ती गाँवों में भी खेल-कूद तथा अन्य पाठ्येतर गतिविधियों के प्रशिक्षण को प्रोत्साहित करने वाले क्रायक्रम भी आयोजित करती हैं।

तारा दीदी ने 'मदर लाइट' के तहत अपनी आध्यात्मिक यात्रा का वर्णन करने वाली किताबें लिखी हैं। उनके वक्तव्य ऑनलाइन ऑडियो तथा वीडियो रूप में भी उपलब्ध हैं। जिसमें उन्होंने अपने अनुभव साझा किए हैं। वे निरंतर कर्मयोग की शिक्षा तथा ज्ञान लोगों तक पहुँचा रही हैं। लाखों लोगों के लिए प्रेरणा स्रोत अत्यंत मिलनसार, सब को प्यार करने वाली हमारी बड़ी बहन तारा दीदी निश्चित रूप से भारत की उदात्त आध्यात्मिक परंपरा का प्रतिनिधित्व करती हैं।

यह हर्ष की बात है कि भारत सरकार ने आज उनके कर्मयोग को मान्यता देते हुए मानवता के हित में श्रीअरविंद के योग पथ और जीवन दर्शन के प्रसार में सराहनीय कदम उठाया है। निश्चय ही इसके द्वारा वैश्विक स्तर पर श्रीअरविंद की शिक्षा के प्रसार द्वारा मानव विकास को एक मजबूत अवलंब मिलेगा।

"लेकिन इन मानव रुपी सत्ताओं को उनके भंयकर मतिभ्रम से खींच लाने के लिए जिसमें वे डूबे हुए हैं आकण्ठ आवश्यकता है कहीं अधिक शक्ति, सामर्थ्य, उदात्त और उच्चतम प्रकाश की अनिवार्यता है कितनी दुर्लभ अविजित दिव्य रुप में मधुर पराक्रम की। स्वार्थ सिद्धि के लिए किए जा रहे इनके कठोर संघर्षो से, क्षुद्र और मूर्खतापूर्ण त्रुटियों से इन्हें छुड़ाने के लिए इन्हें इस अन्ध भंवर से खींच लाने के लिए जिसकी धोखेबाज चमक ने छिपा रखा है अपने पीछे कितनी अधिक जरूरत है श्रम-साधना की? और फिर हे स्वामी उन्हें मोड़ देना होगा तुम्हारी विजयी समन्वयता एवं शान्ति की ओर।"

श्रीमाँ

श्रीमाँ की घोषणा

[श्रीमाँ ने ये घोषणा 15-08-1954 को श्रीअरविन्द के जन्मदिन व स्वतन्त्रता दिवस पर की थी। इस घोषणा पर टिप्पणी लिखी थी श्री के. डी. सेठना ने। इस घोषणा से न केवल श्रीमाँ का भारतवर्ष के प्रति अनन्त प्रेम प्रकट होता है बल्कि ये भी कि वे चाहती थीं कि श्रीअरविन्द-दर्शन का साकार रूप, कि सारे देश एक हैं, 'ईश्वरीय एकता' के रूप में इस धरती पर प्रकट हो - यही उनकी इच्छा थी - यही उनका प्रयत्न था।

मैं इस दिन के साथ अपनी एक चिर-पोषित अभिलाषा की अभिव्यक्ति जोड़ देना चाहती हूँ - वह है भारतीय नागरिक बनने की अभिलाषा। सन् 1914 से ही, जब मैं पहली बार भारत में आई, मैंने अनुभव किया कि भारत ही मेरा असली देश है, यही मेरे आत्मा और अन्त:करण का देश है। मैने निश्चय किया था कि ज्योंही भारत स्वतन्त्र होगा मैं अपनी यह अभिलाषा पूरी करूँगी। लेकिन मुझे उसके बाद भी यहाँ पांडिचेरी के आश्रम के प्रति अपने भारी उत्तरदायित्व के कारण बहुत प्रतीक्षा करनी पड़ी। अब समय आ गया है जबकी मैं अपने विषय में यह घोषणा कर सकती हूँ।

लेकिन, श्रीअरविन्द के आदर्श के अनुसार, मेरा ध्येय यह दिखाना है कि सत्य एकत्व में है न कि विभाजन में। एक राष्ट्रीयता प्राप्त करने के लिए दूसरी को छोड़ना कोई आदर्श समाधान नहीं है, इसलिए मैं आशा करती हूँ कि मुझे दोहरी राष्ट्रीयता अपनाने की छूट रहेगी अर्थात् भारतीय हो जाने पर भी मैं फ्रेंच बनी रहूँगी।

जन्म और प्रारम्भिक शिक्षा से मैं फ्रेंच हूँ। अपनी इच्छा और रूचि से मैं भारतीय हूँ। मेरी चेतना में इन दोनों बातों में कोई विरोध नहीं है, इसके विपरित वे एक-दूसरे से भली प्रकार मेल खाती हैं और एक-दूसरे के पूरक हैं। मैं यह भी जानती हूँ कि मैं दोनों देशों की समान रूप से सेवा कर सकती हूँ, क्योंकि मेरे जीवन का एकमात्र ध्येय है श्रीअरविन्द की महान शिक्षाओं को मूर्त्त रूप देना और उन्होंने अपनी शिक्षाओं में यह प्रकट किया है कि सारे राष्ट्र वस्तुत: एक हैं और सुसंगठित एवं समस्वर विविधता के द्वारा इस भूमि पर भागवत एकत्व को अभिव्यक्त करने के लिए ही उनका अस्तित्व है।

-श्रीमाँ

प्रभु! मुझे सकल भय से मुक्त करो, चिन्तारहित बनाओ जिससे मैं अपनी योग्यता की श्रेष्ठता से आपकी सेवा कर सकूँ। मुझे एक चरम एवं पूर्ण शन्ति का ज्ञान प्रदान करो मेरा हृदय आपकी विजयी पाने हेतु बहुत विशाल एवं विस्तृत बनने की अभीप्सा करता है।

श्रीमाँ

टिप्पणी

आज श्रीअरविन्द के जन्मदिन और भारत के स्वाधीनता दिवस पर श्रीमाताजी की घोषणा हमारे मन में सन् 1920 के जुलाई महीने के एक प्रश्नकर्ता के पत्र के उत्तर में अपने हृदय की इस गम्भीर भावना को जीवन्त रूप में अभिव्यक्त किया था कि जब मैंने सबसे पहले सन् 1910 में श्रीअरविन्द के साथ अपना सम्पर्क स्थापित किया तभी से मैं यह जानती हूँ कि भारत ही वह देश है जिसे मैं सदा ही अपनी सच्ची मातृभूमि मानती रही हूँ।

उसी उत्तर में उन्होंने यह भी बतलाया है कि सन् 1914 में जब मुझे भारत आने का आनन्द प्राप्त हुआ और मैं श्रीअरविन्द के सम्मुख उपस्थित हुई और तुरन्त ही उन्हें उस सत्ता के रूप में पहचान लिया जो मुझे आंतरिक जीवन में सहायता दिया करती थी, तभी मुझे यह दृढ़ निश्चय हो गया कि भारत में श्रीअरविन्द के निकट ही मेरा स्थान है और उन्हीं के पास रहकर मुझे कार्य करना है।

अतएव, आज श्रीमाँ ने जो कुछ घोषित किया है वह तो उनके आंतर जीवन के सत्य की, दूसरे शब्दों में, पुनरावृत्ति ही है जिसका जीता-जागता प्रमाण विगत 34 वर्षों से हमारे सामने उपस्थित है।

इस सत्य को भौतिक जीवन का एक वास्तविक तथ्य बनाने के लिए अंतत: उन्हें एक समुचित अवसर प्राप्त हो गया है और यह अवसर स्वयं उनके लिए तथा उनकी अन्तरात्मा जिस देश को प्यार करती है उस देश के लिए भी एक महान अर्थ रखता है। क्योंकि यह कोई नागरिकता का परिवर्तन मात्र नहीं है, बल्कि एक महान कार्य के विकास में एक ज्वलंत स्तम्भ है और वह महान कार्य है इस महान देश की सच्ची आत्मा को अभिव्यक्त करना और उस अभिव्यक्ति के द्वारा उस अतिमानवीय चेतना की ज्योति को पुन: प्रकट करना तथा उसके उच्चतम विकास तक ले जाना जिसे भारत अपने इतिहास-काल में अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है।

इस चेतना में भारत अन्यान्य देशों से विच्छिन्न कोई एक देश नहीं है, बल्कि वह तो एक बहुविध एकत्व का नेता है, समस्त राष्ट्रों की सुरसंगति का अगुआ है जिसमें समस्त राष्ट्र अपने मौलिक एकत्व का अनुभव करेंगे और अनन्त के यात्री मानव की भवितव्यता को एक महान सहयोग के द्वारा चरितार्थ करेंगे।

इस सर्वग्राही भारतीयता का बाहरी चिन्ह है दोहरी राष्ट्रीयता जिसके लिए श्रीमाताजी ने अपील की है। यह एक चीज के लिए दूसरी चीज का त्याग करना नहीं है, बल्कि यह एक ऐसी चीज को स्वीकार करना है जो विभिन्न तत्वों में अत्यन्त सहज और स्वाभाविक रूप से समन्वय और सामंजस्य ला देगी और फिर भीतरी सद्वस्तु एक सुव्यवस्थित बाह्य आकार धारण कर लेगी - श्रीमाँ की अपील का यही अर्थ है कि वह जिस फ्रेंच और भारतीय भाव को लेकर पृथ्वी पर आयी हैं वे दोनों एक साथ मिल जायें और एक दूसरे को पूर्ण बनायें।

यदि श्रीमाताजी की यह दोहरी राष्ट्रीयता की भावना सफल हो जाय तो हमारा यह दोहरी राष्ट्रीयता की भावना सफल हो जाय तो हमारा यह विश्व, जो आज इतना छिन्न-भिन्न और विभ्रांत है, अत्यन्त नवजीवनदायी पग आगे बढ़ा सकेगा। यह भागवत अभिव्यक्ति के रूप में श्रीअरविन्द के मानव-एकता के आदर्श की एक मूर्त अभिव्यंजना होगी। क्योंकि श्रीमाँ स्वयं श्रीअरविन्द की सृजनात्तिका शक्ति के रूप में हमारे बीच उपस्थित हैं और उनकी इस दोहरी राष्ट्रीयता के प्रतीक के द्वारा एक ऐसा मार्ग खुलना आरम्भ हो जायगा जिससे होकर

अतिजीवन (दिव्य जीवन) की अद्भुत धारायें पृथ्वी पर प्रवाहित होने लगेंगी। और फिर इन धाराओं के परिणाम स्वरूप, जैसा कि पौराणिक गाथा हमें बताती है, अमर देवी भारत माता अपने सच्चे स्वरूर में प्रकट होंगी और अपने विश्वव्यापी अन्तरात्मा के द्वारा इस देश को तथा इससे मूलत: संलग्न विशाल जगत को भी महान बनायेंगी।

-के. डी. सेठना

वर्ष-16, अगस्त 1986, अंक-8

"सिर्फ इसी संसार में यह मुमकिन है कि मनुष्य उन्नति कर सकता है और अपने विगत तथा वर्तमान जीवन के भारों को हल्का कर सकता है। साथ ही वह एक अधिक मंगलमय, एक अधिक उत्तम जीवन की तैयारी भी कर सकता है। यह केवल यहीं इस पृथ्वी पर संभव है कि तुम्हें उस शाश्वत की ओर बढ़ने का मौका प्राप्त हुआ है। मैंने अनेक दूसरी सृष्टियाँ देखी हैं जो सुस्त हैं, धंधली हैं और अंधेरों से भरी हुई हैं। जहाँ के प्राणी ऊबते हैं और खुशियों को अंधों की तरह टटोलते हैं। मेरे बच्चों, तुम्हें हर कदम पर रास्ता बनाना है और दृढ़तापूर्वक सत्य के भविश्य में पाँव रखना है। तुम्हें दुराग्रही होने की सीमा तक दृढ़ होना है क्योंकि भगवान स्वयं अपने उद्देश्य में अज्ञान, अन्धकार, दुर्बोधता एवं अवसाद को हटाने में दुराग्रही हैं। उस सर्वोच्च ब्रह्म को बिना पूर्ण हुए हम नहीं जान सकते। वर्षों पर वर्ष, सदियों पर सदियाँ बीत जाते हैं। कार्य अनवरत्त जारी है।"

-श्रीमाँ

अभीप्सा

अभीप्सा कामना का रूप नहीं, बल्क आत्मा की आवश्कता होनी चाहिए और होनी चाहिए नीरव-निश्चल इच्छा जो भगवान की ओर मुड़ी हो और उन्हीं की खोज में जुटी हो।

मनुष्य के अन्दर आध्यात्मिक अभीप्सा जन्म जात होती है। पशु से भिन्न, वह अपनी अपूर्णताओं और सीमाओं को जानता है और अनुभव करता है कि उसे अभी जो है उससे परे की किसी चीज़ को पाना है। जड़-भौतिक में प्रगतिशील चिन्तक मन के प्रकट होने तक क्रम-विकास पर प्रभाव पड़ा है, लेकिन वह पड़ा है प्रकृति की यान्त्रिक क्रियावली द्वार यानी अवचेतन या अन्तस्तलीय रूप में क्योंकि उसमें अपने-आपको जानने की अभीप्सा, आशय, संकल्प या किसी सत्ता की खोज नहीं थी..., मनुष्य जब आया तब से उसके मन और प्राण

में क्रम-विकासात्मक उद्दीपन है, उसके अन्दर अपना अतिक्रमण करने की अभीप्सा है । जो स्पष्ट रूप से दृष्टि गोचर है और उसमें बसी हुई है...। सच्ची अभीप्सा का ठीक-ठीक अर्थ ऐसी अभीप्सा है जिसमें किसी पक्ष पात भरे और अहंकार पूर्ण हिसाब-किताब का मिश्रण न हो। अगर तुम सचेतन अभीप्सा की अवस्था में हो, बहुत सच्चे हो तो बस, तुम्हारे आस-पास की सभी चीजें, प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप से, अभीप्सा में मदद करने के लिए सुव्यवस्थित कर दी जायेंगी, यानी, या तो तुमसे प्रगति करवाने के लिए, किसी नयी चीज़ के सम्पर्क में लाने के लिए, या फिर वह तुम्हारे स्वभाव में से किसी ऐसी चीज़ को उखाड़ फेंकने में तुम्हारी मदद करेगी जिसे विलुप्त हो जाना चाहिये। यह काफी अद्भुत है। अगर तुम सचमुच अभीप्सा की तीव्रता की अवस्था में हो तो ऐसी कोई परिस्थिति नहीं जो इस अभीप्सा को चरितार्थ करने के लिए तुम्हारी सहायता करने न आये।

हर चीज़ मदद करने आती है , हर चीज़ मानों कोई ऐसी पूर्ण औ बिना र निरपेक्ष चेता विद्यमान है जो तुम्हारे चारों ओर सभी चीज़ को संगठित कर रही है । श्रीमाँ द्वारा दिया गये पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या–

शर्त यही है कि वह अभीप्सा सच्ची होनी चाहिए, जैसे कि यह कहानी कहती है –

सच्ची प्यास

कहानी

किसी रेलवे स्टेशन पर जब एक गाड़ी रूकी तो एक लड़का पानी बेचता हुआ निकला.... ट्रेन में बैठे एक सेठ ने उसे आवाज दी, ऐ लड़के इधर आ....लड़का दौड़ कर आया....उसने पानी का गिलास भर कर सेठ की ओर बढ़ाया तो सेठ ने पूछा,

कितने पैसे में ?

लड़के ने कहा- पच्चीस पैसे....

सेठ ने उससे कहा कि पंद्रह पैसे में देगा क्या?

यह सुन कर लड़का हल्की मुस्कान दबाए पानी वापस घड़े में उड़ेलता हुआ आगे बढ़ गया.... उसी डिब्बे में एक महात्मा बैठे थे, जिन्होंने यह नजारा देखा था कि लड़का मुस्कुराया, पर मौन रहा....,

जरुर कोई रहस्य उसके मन में होगा

सोचते हुए महात्मा नीचे उतर कर उस लड़के के पीछे-पीछे गए... बोले – ऐ लड़के ठहर जरा, यह तो बता तू हँसा क्यों?

वह लड़का बोला, मुझे यह सोचकर हँसी आई कि उन्हें प्यास तो लगी नहीं थी, बस यूहीं पानी का दाम जानना चाहते थे। लड़के, तुझे ऐसा क्यों लगा कि सेठजी को प्यास लगी ही नहीं थी ?

लड़के ने जवाब दिया-महाराज, जिसे वाकई प्यास लगी हो, वह कभी रेट नहीं पूछता... वह तो गिलास लेकर पहले पानी पीता है, फिर बाद में दाम के बारे में पूछता है, पहले दाम पूछना और मोल-भाव करने का अर्थ है कि प्यास तो लगी ही नहीं है....।

वास्तव में जिन्हें ईश्वर और जीवन में कुछ पाने की तमन्ना होती है, वे वाद-विवाद में नहीं पड़ते....।

पर जिनकी प्यास सच्ची नहीं होती, वे ही वाद-विवाद में पड़े रहते हैं....,

जब तक अभीप्सा सच्ची न हो साधना के पथ पर आगे नहीं बढ़ा जा सकता...।

ग्रहणशीलता

मेरा प्रेम हमेशा तुम्हारे साथ है; लेकिन अगर तुम उसे अनुभव न करो तो इसका अर्थ है कि तुम उसे ग्रहण करने में समर्थ नहीं हो। यह तुम्हारी ग्रहणशीलता की कमी है और तुम्हें अपने प्रति ग्रहणशीलता को बढ़ाना चाहिए, इसके लिए तुम्हें अपने आपको खोलना चाहिए और तुम अपने-आपको तभी खोलते हो जब अपने-आपको देते हो। बदले में किसी चीज़ की आशा किये बिना अपने-आपको दे दो, तब तुम पाने में समर्थ हो जाओगे।

ग्रहणशीलता का पहला आधार है सच्चाई और नम्रता। जितना घमण्ड तुम्हारे हृदय के द्वार बन्द कर देता है उतना कोई और वस्तु नहीं करती। जब तुम अपने में सन्तुष्ट रहते हो, तो यह तुम्हारे अन्दर का अंह ही होता है जो तुम्हें यह मानने ही नहीं देता कि तुम्हारे अन्दर भी कोई कमी है, कि तुम भी ग़लतियाँ करते हो, कि तुम भी अधूरे हो, अपूर्ण हो,

तुम्हारी प्रकृति में यदि कोई ऐसी चीज़ मौजूद है जो इस प्रकार कठोर पड़ जाती है, जो अपना दोष स्वीकार करना नहीं चाहती-यही चीज़ है तुम्हें उच्चतर वस्तु को ग्रहण करने से रोकती है। बहरहाल, इस अनुभव को प्राप्त करने के लिए तुम कोशिश कर सकते हो। यदि तुम संकल्प-शक्ति के बल पर अपनी सत्ता के एक छोटे-से-छोटे भाग से भी यह कहलवा सको कि "ओह, हाँ, हाँ, यह मेरी ही भूल थी, मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था, हाँ यह मेरा दोष है,यदि तुम उससे यह ,स्वीकार करा सको तो शुरु-शुरु में तो जैसा कि मैंने कहा, तुम्हें इससे कष्ट होगा, पर यदि तुम इस पर अड़े रहो, जब तक कि वह पूरी तरह स्वीकृत न हो जाए, तो वह भाग तत्काल ही खुल जाएगा-और प्रकाश का पुञ्ज उसके अन्दर प्रवेश समय तक इसका प्रतिरोध कर रहा था? कैसा मूर्ख था मैं। अपने अन्दर उपस्थित अहंकार से जब तक हम अनजान नहीं है तब तक कृपा को ग्रहण करने में असमर्थ रहते हैं। निम्नांकित कहानी हमें यही सिखाती है।

"हमें एकता जरूर बनानी चाहिए, लेकिन एकरूपता अनिवार्य नहीं है। यदि मनुष्य पूर्ण आध्यात्मिक एकता का अनुभव कर सकता है, तो किसी प्रकार की एकरूपता की आवश्यकता नहीं होगी; विविधता के अधिकतम खेल उस नींव पर सुरक्षित रूप से संभव होंगे।"

- श्रीअरविन्द

कहानी

पादरी का विश्वास और ग्रहणशीलता

एक छोटा सा गांव था। गांव में एक गिरजाघर था जिसके पादरी को ईश्वर में बहुत आस्था थी। वे अपना पूरा जीवन ईश्वर के प्रति समर्पित कर चुके थे। एक बार की बात है गांव में भंयकर बाढ़ आई, पानी बढ़ता ही जा रहा था। चारों तरफ हाहाकार मचा था। पूरा गांव पानी में डूबने लगा। सरकार की तरफ से गांव खाली करने का आदेश आया। कुछ युवकों ने सबकी सहायता करनी शुरू की। वे लोगों को सहारा देकर गांव के बाहर पहुंचाने लगे। सभी डरे हुए थे और ईश्वर से प्रार्थना कर रहे थे। युवकों ने नाव के द्वारा लोगों को सुरक्षित स्थान पर पहुँचाया। तभी उन्हें पादरी जी का ख्याल आया। वे उनके पास गए और हाथ जोड़कर कहा, आप भी हमारे साथ चलें, गांव में रुकना खतरे से खाली नहीं है। पादरी ने मुस्कुराते हुए कहा, बच्चों तुम लोग जाओ, मेरी चिंता मत करो ईश्वर मेरी रक्षा करेंगे। लोगों ने बहुत समझाया में व्यस्त हो गए। पानी और बढ़ गया था। अब तो लगता था जैसे गिरजाघर भी उसी में डूब जाएगा। कुछ युवक मोटर बोट लेकर वहां पहुंने और पादरी जी से पुन: प्रार्थना की उन्हें समझाया, कृपया आप हमारे साथ चलें, पानी सर से ऊपर आ रहा है, मगर पादरी ना माने। बेचारे युवक मायूस होकर चले गए। और रुकना उनके लिए भी खतरे से भरा था। पादरी अपने अंधविश्वास पर खड़े रहे। कुछ समय के बाद गिरजाघर उनके साथ पानी में समा गया।

मृत्यु के पश्चात पादरी ईश्वर के सामने पहुंचे, उन्होंने नाराजगी और दुख के साथ ईश्वर से कहा, यह क्या मैं आप पर विश्वास कर रहा था,मैं मानता था कि आप मेरी रक्षा करेंगे मगर आपने मुझे नहीं बचाया!

ईश्वर मुस्कुराए, उन्होंने कहा बचाने की कोशिश तो की थी, युवकों को भेजा, नांव भेजी, मोटर बोट भेजी मगर तुमने मेरी सहायता ग्रहण ही नहीं की, बताओ मैं क्या करता तुम्हारी ग्रहणशीलता इतनी कम थी कि वह मेरी सहायता को पहचान ही ना सकी। तुम्हारा अंधविश्वास ही तुम्हारे अहम का कारण बन गया। पादरी महोदय की आंखें झुक गई, उन्हें अपनी गलती का एहसास हो गया था।

अपने अंदर सच्ची ग्रहणशीलता को विकसित करना बहुत जरूरी है, अनिवार्य है।

सच्चे व्यक्ति के रूप में स्वयं के भीतर गुप्त चैत्य सत्ता के प्रति जागरूक होना भी संभव है; या कोई चैत्य सत्ता को शुद्ध "मैं" के रूप में जान सकता है..

- श्रीअरविन्द

श्रीअरविंद का साहित्य रचना कर्म – गद्य

डॉ सुरेश चंद्र त्यागी

13.08.2021

(श्रीअरविंद आश्रम – दिल्ली शाखा द्वारा श्रीअरविंद की 150वीं जन्म शताब्दी वर्ष पर आयोजित त्रि-दिवसीय वेबिनार – 'संभवामि युगे युगे' में डॉ.सुरेश चंद्र त्यागी का वक्तव्य।)

आज हम इसलिए जुड़ रहे हैं ताकि हम श्रीअरविंद की चिंतन धारा से जुड़ सकें, यह सारा प्रयास इसीलिए है। श्रीअरविंद का रचना कर्म, इतना व्यापक विषय है कि इसे एक वार्ता में समेट लेना मुझ जैसे अल्पज्ञ के लिए असंभव है। जब कभी श्रीअरविंद के विषय में कुछ कहने-बोलने का अवसर मिलता है तो मुझे बड़ा संकोच होता है; एक प्रसंग याद आ जाता है। 1937-38 के करीब की बात होगी एक शिष्य श्रीअरविंद के पास गया और उसने कहा कि मैं एक पत्रिका प्रारम्भ करना चाहता हूँ, आपका आशीर्वाद चाहिए। श्रीअरविंद ने उत्तर दिया, "पत्रिका तो निकालोगे लेकिन तुम उसमें प्रकाशित क्या करोगे?" और फिर धीरे से बोले, "अपनी अज्ञानता, क्या यही प्रकाशित करोगे?" जब भी श्रीअरविंद के विषय में बोलने का अवसर आता है, मुझे लगता है श्रीअरविंद मेरे सामने बैठे हैं और पूछ रहे हैं, "क्या बोलोगे? अपनी अज्ञानता?" मैं कहता हूँ, "यह तो मैं जानता हूँ कि मैं अज्ञानी हूँ लेकिन मुझे एक अवसर मिल रहा है आपके नामोच्चार का, वह नहीं जाने दूँगा।" उसी अवसर का उपयोग करते हुए मैं अपनी बात प्रस्तुत कर रहा हूँ।

कभी आप ध्यान से श्रीअरविंद के व्याख्यान पढ़ें। पढ़ें तो पूरे लेकिन जहाँ-जहाँ से सूत्र मिलते हैं, छोटे-छोटे, उन्हें तलाश करें। मैं आपसे बहुत अनौपचारिक बात कह रहा हूँ, अनौपचारिक माध्यम से ही कह रहा हूँ। पूना में एक बार श्रीअरविंद को निमंत्रित किया गया। 'पूना व्याख्यान' के नाम से उनका यह व्याख्यान छपा। जब श्रीअरविंद बोलने के लिए खड़े हुए तो उन्होंने कहा कि मैं यहाँ बोलने नहीं आया था, मैं तो सुनने आया था। मैं यह स्वीकार करता हूँ, ध्यान दीजिये इन शब्दों पर, कि 'वाणी मेरा हथियार नहीं है। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि भाषण मेरा हथियार नहीं है। मेरा हथियार मेरी लेखनी है।' हम सब यहाँ बैठे हैं, अपने-अपने हृदय को खोलिए। श्रीअरविंद की उस लेखनी का, उस लेखनी के बाणों का आनंद लीजिये। प्रभु की कृपा से ये बाण हमें बींध डालें हमारी यह कामना होनी चाहिए।

असल में यह विषय बहुत व्यापक है – रचना कर्म - श्रीअरविंद जैसी रचनात्मक प्रतिभा के इतने अधिक रूप हैं और वह कहाँ तक फैला हुआ है हम इसका अनुमान भी नहीं लगा सकते, और फिर हमने तय किया है कि हम सारे रचना कर्म नहीं लेंगे। यह संभव नहीं है। इसके लिए फिर अवसर आएंगे। हम केवल साहित्य के संदर्भ में उनके रचना कर्म को पहचानने की कोशिश करेंगे, उसको छूने का प्रयास करेंगे। उसकी समूची समीक्षा तो संभव है ही नहीं। साहित्य शब्द भी कितना व्यापक है। अँग्रेजी में लिटरेचर है, हिन्दी में साहित्य है, उर्दू में अदब है। साहित्य का क्या अर्थ है? अगर व्यापक रूप में देखें तो साहित्य का अर्थ है, वह जो लिखा हुआ है। जो कुछ भी लिपिबद्ध है वह है साहित्य। दवाइयों के विज्ञापन भी साहित्य हैं। कालिदास का मेघदूत भी साहित्य है। व्यापकता है इसमें। जो कुछ भी लिपिबद्ध है। आपने देखा होगा, सुना होगा, मेडिकल प्रतिनिधि

आते हैं कहते हैं, "आप हमारा लिटरेचर देखिये।" वे हमें कालिदास नहीं दिखाते। वे हमें दवाइयों के विज्ञापन दिखाते हैं। वहाँ तक 'लिटेरचर' शब्द है। 'साहितस्य भाव साहित्यम' – सहित का भाव साहित्य है। जो सहित की साधना करे वह साहित्य है। अदब – जो हमें शालीनता सिखाये, शिष्टाचार सिखाये, शिष्टाचार की संहिता है वह साहित्य है। इतना व्यापक है साहित्य, लिटरेचर, अदब। यूँ कहिए, साहित्य एक चौराहा है। उसमें से अनेक सड़कें निकलती हैं। एक कविता की तरफ जाती है, एक उपन्यास की तरफ जाती है, एक निबंध की तरफ जाती है, एक आलोचना की तरफ जाती है, एक नाटक की तरफ जाती है। ये साहित्य की विभिन्न विधाएँ हैं। और ये सारी विधाएँ एक जगह आकर मिलती हैं और उस जगह का नाम है साहित्य। आप मेरे बाद श्रीअरविंद के एक बहुत महत्वपूर्ण रूप, कवि का रूप सुनेंगे। मुझे उसमें प्रवेश नहीं करना है। मैं उनके साहित्य के दूसरे रूपों का परिचय प्राप्त करना चाहता हूँ, जिनमें श्रीअरविंद ने अपनी प्रतिभा का प्रसाद हमें दिया। कहाँ से शुरू करूँ? चलिये कहानी से शुरू करते हैं।

रचना-कर्म के अनेक पक्ष हैं कि जिनकी तरफ तो ध्यान ही नहीं गया। आप चाहें तो उन्हें लिखते चलिये। उनके कुछ पक्ष इतने प्रमुख हो गए कि हमने अन्य पक्षों को गौण मान लिया और उधर ध्यान ही नहीं दिया। श्रीअरविंद का यह पक्ष हम पहचानना चाहेंगे कहानी से। कहानी गद्य की विधा है। मैं जिस विषय पर आज बोल रहा हूँ सारी गद्य की विधाएँ हैं। हमारे यहाँ गद्य को कवियों की कसौटी कहा गया है। संस्कृत में कहावत है 'गद्यम कवीनां निकषम वदन्ति' - गद्य कवियों की कसौटी है। वाणभट्ट संस्कृत के कवि हैं, कादम्बरी उनकी गद्य रचना है। लेकिन वाणभट्ट महाकवि हैं। कवि शब्द इतनी व्यापकता लिए हुए है, संस्कृत में कि यह विस्तार से विचार का विषय है। मैं कहानी से शुरू करता हूँ। श्रीअरविंद ने कुछ कहानियाँ लिखी हैं। एक बार उन्होंने खुद कहा था, 'मैंने कई कहानियाँ लिखी थीं जो खो गईं।' और फिर अपने मनोविनोद में उन्होंने कहा 'उन्हें दीमकों ने खा लिया। उन्होंने समाप्त कर दिया मेरी कहानियों को।' और फिर हँस कर बोले, 'कहानीकार के रूप में मेरे भविष्य को चौपट कर दिया।' क्या मज़ाक किया उन्होंने। अँग्रेजी में उन्होंने जो कहानियाँ लिखीं उन 4-5 कहानियों में पूरी कहानी केवल एक है। जो कहानी पूरी है उसका शीर्षक है 'द फंटोम आवर' – मायावी घड़ी या मायावी घंटा। केवल यही कहानी पूरी उपलब्ध है, बाकी कहानियों के कुछ-कुछ अंश ही मिलते हैं। लेकिन बंगला में लिखी दो कहानियाँ हमें उपलब्ध हैं। ये पूरी हैं और आपलोगों ने जरूर पढ़ी होगी।

पहली कहानी है 'स्वप्न'। एक बूढ़ा आदमी है। उसका नाम है हरिमोहन। वह भगवान से बड़ा नाराज है। बड़े ताने मारता है – फलां ऐसा है, फलां वैसा है, उसे बड़ी समृद्धि हासिल है, उसने इतना कुछ प्राप्त कर लिया है और मैं गरीब हूँ। अगर भगवान मेरे सामने आ जाएँ तो मैं उसकी बूरी तरह मरम्मत करूँ – चाबुक से। ऐसा नाराज है वह। रात को उसे स्वप्न आता है। भगवान कृष्ण, बालक रूप में स्वप्न में आते हैं। उससे लंबी बातचीत करते हैं। उसके सारे प्रश्नों का उत्तर देते हैं। बड़ा आनंद आयेगा आपको। इस कहानी में भगवान और हरिमोहन का संवाद पढ़िये और उसमें आनंद लीजिये। स्वप्न के समाप्त होते-होते भगवान चलने लगते हैं और हरिमोहन के हाथ में चाबुक थमा जाते हैं, 'ले, अब तू मेरी मरम्मत कर।' आगे मैं कुछ नहीं कहता आपसे, आगे पर्दे पर देखिये। पर्दे पर देखिये का अर्थ क्या है? इस कहानी का नाट्य रूपांतर। हम में से बहुतों ने इसे डाल्टनगंज में देखा था। वहाँ श्रीअरविंद सोसाइटी का सम्मेलन था। वहाँ के कलाकारों ने 'हरिमोहन का सपना' के नाम से इसका नाट्य रूपांतर प्रस्तुत किया था, मंचन किया था। आज तक मेरे दिमाग में यह बसा हुआ है। आपलोगों में से कई साथी होंगे – मारोदियाजी हैं, तुलस्यान जी हैं। मैं वहाँ था। आदरणीय पोद्दारजी और भी बहुत लोग थे। खुले मंच पर हुआ था वह नाटक। मेरा आपलोगों से आग्रह है कि यदि संभव हो तो आप अपनी सोसाइटी की

तरफ से, राज्य समिति, ज़ोनल समिति, शाखा की तरफ से इस कहानी का नाट्य रूपांतर प्रस्तुत कीजिये, मंच पर मंचन कीजिये। दूर दूर तक यह लोकप्रिय होगा।

दूसरी कहानी जिसे श्रीअरविंद ने लिखी उसका नाम है 'क्षमा का आदर्श'। यह कहानी वशिष्ठ और विश्वामित्र के सम्बन्धों पर है। विश्वामित्र की नाराजगी और वशिष्ठ किस तरह उसे क्षमा करते हैं इसकी कहानी है। यह छोटी सी कहानी अढ़ाई पृष्ठों की है। अगर, मैं फिर से आग्रह करता हूँ, संभव हो तो इस कहानी का भी नाट्य रूपांतर किया जाए। बहुत ही आनंद आयेगा। कहानी तो छोटी सी ही है लेकिन कहानी का अंत कहाँ संकेत करता है इसे समझने का प्रयास हमलोग करें। श्रीअरविंद लिखते हैं 'भारत में ऐसे थे ऋषि, ऐसे थे साधु और ऐसा था क्षमा का आदर्श । तपस्या का ऐसा प्रताप था कि सारी पृथ्वी का भार धारण किया जा सकता था। भारत में पुनः ऐसे ऋषियों का जन्म हो रहा है जिनके प्रभाव के सामने प्राचीन ऋषियों की ज्योति हतप्रभ हो जायेगी; जो पुनः भारत को अतीत के गौरव से अधिक गौरव प्रदान करेंगे।' यहाँ श्रीअरविंद कहाँ संकेत कर रहे हैं? 'भारत में ऐसे ऋषियों का जन्म हो रहा है' – क्या आपको नहीं लगता की ये ऋषि स्वयं श्रीअरविंद हैं? ये थी दो कहानियाँ। यह थी सबसे छोटी विधा जिसमें श्रीअरविंद ने लिखा। एक अँग्रेजी की पूरी कहानी, कुछ अधूरी, और दो ये पूरी कहानियाँ बंगला में।

अब मैं नाट्य साहित्य की ओर आता हूँ। ये बहुत महत्वपूर्ण हैं लेकिन इस तरफ ध्यान ही नहीं गया। हमारे यहाँ नाटक को भी काव्य रूप कहा गया है। 'काव्येषु नाटकं रम्यमं' बड़ी प्रसिद्ध उक्ति है। काव्यों में नाटक रम्य है। नाटकों में भी शकुंतला नाटक रम्य है। शकुंतला नाटक में भी चौथा अंक रम्य है। उस चौथे अंक में भी चार श्लोक हैं वे रम्य हैं। नाटक हमारे यहाँ काव्य ही है। इसके विस्तार में फिर कभी चलेंगे। श्रीअरविंद ने पाँच पूरे नाटक लिखे, जो पूर्ण रूप से प्राप्त हैं। मैं बता रहा था भारत में हमारे विश्वविद्यालयों में 175 व्यक्तियों ने श्रीअरविंद पर शोध किए। इतने ही कर रहे हैं। लेकिन नाटकों पर 2-3 के अलावा किसी का ध्यान नहीं गया। ऐसा क्यों हुआ, इसकी जानकारी नहीं है। लेकिन श्रीअरविंद के पाँच सम्पूर्ण नाटक हैं, पाँच-पाँच अंकों के। आप जानते होंगे फिर भी मैं बता देता हूँ – 1. The Viziers of Bassora (द विजिएर्स ऑफ बसोरा) , 2. Rodogune (रोडोगुन), 3. Perseus the Deliverer (परसियस द डेलीवरर), 4. Eric (एरिक), 5. Vasavadutta वासवदत्ता1। नाटकों का रचनाकाल 1905 से प्रारम्भ होकर 1915 तक फैला हुआ है। यह देख कर आश्चर्य होता है। 1905 राजनीतिक गतिविधियों का चरम काल था। 1915 जब श्रीअरविंद पांडिचेरी पहुँच गए थे, तब भी नाटक लिखा। इन पर ध्यान क्यों नहीं गया? द विजिएर्स ऑफ बसोरा की पाण्डुलिपि को अलीपुर बम कांड के दौरान पुलिस ने जब्त कर लिया था। 1908 की बात है यह। गिरफ्तारी के बाद श्रीअरविंद ने पाण्डुलिपि देखी नहीं। उन्हें बड़ा दुःख था की इसकी पाण्डुलिपि खो गई है। 1952 में, श्रीअरविंद के देह त्याग के बाद, पश्चिम बंगाल सरकार ने ये पाण्डुलिपि आश्रम को भेंट की। और फिर 1959 में 'श्रीअरविंद वार्षिकी' (SriAurobindo Annual) में छपी। यानि श्रीअरविंद के जीवन काल में यह नाटक छपा ही नहीं। लिखने के बाद उन्होंने इसे दुबारा देखा तक नहीं। इसके बाद यह नाटक पुस्तक के रूप में भी छपा। इस नाटक के कथानक को अरेबियन नाइट्स से लिया गया है। श्रीअरविंद ने अरेबियन नाइट्स का अँग्रेजी अनुवाद बड़ौदा में पढ़ा था और उन्होंने कहा था कि यह उत्तम कोटि का (क्लासिकल) अनुवाद है। वहाँ से इसकी कथा ली गई है।

दूसरे नाटक रोडोगुन की रचना बड़ौदा में हुई थी। इसकी पाण्डुलिपि भी पुलिस ने जप्त कर ली थी। पांडिचेरी आ कर श्रीअरविंद ने इस नाटक को फिर दुबारा लिखा। और फिर यह भी 'श्रीअरविंद वार्षिकी'

(SriAurobindo Annual) में छपा, 1958 में। श्रीअरविंद के जीवन काल में यह भी नहीं छपा। इसकी कहानी सीरिया की रानी क्लेयोपेट्रा के इतिहास सी ली गई है।

'तीसरा नाटक परसियस द डेलीवरर की रचना राजनीतिक गतिविधियों के दौरान हुई थी। यह नाटक श्रीअरविंद ने वन्देमातरम में प्रकाशित करवाया था, 1907 में। इसका प्रकाशन होना था, यह तय हो गया था। प्रिंटर को इसकी पाण्डुलिपि दे दी गई थी। लेकिन जब प्रिंटर को यह समाचार मिला कि श्रीअरविंद गिरफ्तार होने वाले हैं, तब उसने इस प्रति को नष्ट कर दिया। बहुत बाद में, 1942 में यह नाटक छपा। श्रीअरविंद के जीवन काल में उनके आशीर्वाद से दो खंडों में "सेलेक्टिव पोएम्स अँड प्लेज़" (Selective Poems & Plays) छपा था। अगर आपके पास वे खंड उपलब्ध हों तो उन्हें एक बार जरूर देखिये। मेरे पास 1942 में छपे वे दोनों खंड हैं, लेकिन उनके कागज अब ऐसे हो गए हैं कि उन्हें पलटते ही वे टूट जाते हैं। खैर ऐसे बहुत से ग्रंथ इधर-उधर लोगों के पास पड़े हैं।

चौथा नाटक है एरिक। इस नाटक की रचना पांडिचेरी आने के कुछ समय पश्चात शुरू हुई थी। रुक-रुक कर वर्षों में यह नाटक पूरा हुआ। 1960 में 'श्रीअरविंद मंदिर वर्षीकी' (SriAurobindo Mandir Annual) में छपा। फिर पुस्तक के रूप में भी छपा। इसकी कहानी नार्वे के इतिहास से ली गई है।

और फिर अंत में आता है पाँचवां नाटक वासवदत्ता। इसकी रचना 1915 में पांडिचेरी में हुई। यह श्रीअरविंद का अंतिम नाटक है। 1957 में यह छपा।

ये पाँच उनके पूर्ण नाटक हैं। अब मेरा ध्यान इस बात पर जाता है कि इन पर ध्यान क्यों नहीं गया। दरअसल इन नाटकों की पृष्ट भूमि भारतीय परिवेश से भिन्न है, सिवाय वासवदत्ता के। वासवदत्ता का मतलब भास के नाटक वासवदत्ता से नहीं है। कथासरित्सागर नाम से संस्कृत में एक बहुत बड़ा ग्रंथ है, वहाँ से इसकी कथा ली गई है। इन पाँच नाटकों के अतिरिक्त श्रीअरविंद के लगभग 7 अधूरे नाटक हैं। मैं उन्हें केवल छू रहा हूँ। इससे ज्यादा समय नहीं दिया जा सकता है।

अगर मैं श्रीअरविंद के अनुवाद कार्य को इस सर्वेक्षण में न लूँ तो यह कार्य अधूरा रह जाएगा। मैं यहाँ श्रीअरविंद के वैदिक मंत्रों और उपनिषदों के अनुवाद नहीं ले रहा हूँ। वे तो अलग हैं, मैं उन्हें नहीं ले रहा हूँ। मैं केवल साहित्यिक संदर्भ ले रहा हूँ। अँग्रेजी के अलावा श्रीअरविंद का कई विदेशी भाषाओं पर असाधारण अधिकार था – वे थीं फ्रेंच, लैटिन, ग्रीक, संस्कृत और बंगाली। इसके अलावा, इटैलियन, जर्मन, स्पैनिश, हिन्दी या हिंदुस्तानी, गुजरती, मराठी, तमिल भाषाओं की भी उन्हें जानकारी थी।

जहाँ तक संस्कृत काव्य की बात है, हम बहुत ध्यान से इस बात को समझें, श्रीअरविंद ने वाल्मीकि रामायण और महाभारत के अनेक अंशों का अँग्रेजी में अनुवाद किया। अभी तो शायद आपने इधर ध्यान ही नहीं दिया होगा, और अगर दिया है तो बहुत अच्छा है। मैंने अदिति2 में संस्कृत और श्रीअरविंद का अनुवाद प्रकाशित किया था। उन्होंने मृदुला का प्रसंग, जो महाभारत में है, उसका भी अनुवाद किया है। उसका शीर्षक रखा था – The Mother to His Son – संस्कृत कवियों में उनके सबसे प्रिय कवि हैं कालिदास। कालिदास के नाटकों का श्रीअरविंद ने अनुवाद किया। उन्होंने 'कुमारसम्भव' जो कालिदास का महाकाव्य है उसके भी कुछ

सर्गों का अनुवाद किया है। सबसे मुख्य बात यह है कि श्रीअरविंद ने मेघदूत का भी अनुवाद किया। मेघदूत कालिदास का अति प्रसिद्ध काव्य है। जब श्रीअरविंद पांडिचेरी आ गए तब उन्होंने इसका अनुवाद अपने एक मित्र को सौंप दिया था – 'देखो इसे सुरक्षित रखो मेरे पास यह सुरक्षित नहीं है'। उनके मित्र ने उसे एक बाँस के बक्से में रख कर छिपा दिया कि किसी की नज़र न लगे। बाद में जब उस बक्से को खोला गया, तब उसे दीमकों ने खा लिया था। श्रीअरविंद पर क्या बीती होगी, यह तो वे ही जानते होंगे, हम पर क्या बीती यह हम जानते हैं। अगर मेघदूत का अनुवाद आज उपलब्ध होता तो वह एक अद्भुत पुस्तक होती। लेकिन उस अनुवाद के कुछ अंश हमें एक निबंध में मिल जाते हैं। श्रीअरविंद ने एक निबंध लिखा था – On Translating Kalidas। उसमें कुछ संदर्भ दिये हैं और कुछ उद्धरण दिये हैं। मेघदूत के कुछ छंदों का अनुवाद हमें वहाँ मिल जाता है। लेकिन वह पर्याप्त नहीं है। श्रीअरविंद का जो सबसे प्रसिद्ध अनुवाद है वह भर्तहरि के 'नीति शतक' का है। प्रारम्भ में उन्होंने इसका नाम रखा था 'The Century of Morals'। लेकिन बाद में जब यह पुस्तक के रूप में आया तब उन्होंने इसका नाम रखा दिया 'The Century of Life'। अगर भर्तहरि में रुचि है तो इस अनुवाद को अवश्य पढ़ें।

श्रीअरविंद ने बंगला का तो अध्ययन किया ही था, बड़ौदा में रहते हुए। उन्होंने विद्यापति के पदों का भी अँग्रेजी में अनुवाद किया था। वन्देमातरम गीत, जो हमारा राष्ट्रीय गान है, का श्रीअरविंद का किया हुआ अनुवाद सबसे प्रामाणिक माना जाता है और यह प्रसिद्ध भी है। यह गीत 'आनंद-मठ' उपन्यास में आया था। आनंदमठ उपन्यास बंकिम चन्द्र चटर्जी का है, यह आप सब जानते हैं। लेकिन यह बात बहुत कम लोगों को ज्ञात है कि श्रीअरविंद ने आनंद मठ के पहले 13 अध्यायों का अँग्रेजी में अनुवाद किया था। यह जान कर आपको और आश्चर्य होगा कि बाद के अध्यायों का अनुवाद बरीन्द्र कुमार घोष ने किया था। आधा बड़े भाई ने किया और आधा छोटे भाई ने, यह तो अजीब संयोग था। 1942 में यह पूरा छपा था। मुझे वह प्रति कहीं से हाथ लगी, और मैंने उसे पूरा का पूरा छाप दिया। अब तो इसकी एक भी प्रति मेरे पास भी नहीं है।

एक और चीज है, बड़ी आनंद दायक लगेगी आपको। कैसी-कैसी घटनाएँ किस तरह घटती हैं। श्रीअरविंद ने चित्तरंजन दास की बंगला कविताओं का संग्रह, 'सागर संगीत', का अनुवाद अँग्रेजी में किया था। उसका अनुवाद करने के पीछे एक पृष्टभूमि थी। श्रीअरविंद पांडिचेरी में थे। आर्थिक कष्ट बड़ा जबर्दस्त था। जूते नहीं थे, कपड़े नहीं थे। कुछ नहीं था। तब सी.आर.दास कुछ भेंट देना चाहते थे, सहयोग करें तो कैसे करें? सीधे पैसा भेज नहीं सकते। तब प्रस्ताव आया कि श्रीअरविंद सी.आर.दास की कविता संग्रह, सागर संगीत का अनुवाद करें और वे उसके पारश्रमिक के रूप में एक हजार रुपए भेज देंगे। इसे पारश्रमिक माना जाएग, किसी क्रांतिकारी की सहायता नहीं मानी जाएगी। श्रीअरविंद ने सागर संगीत का अनुवाद कर दिया। यह प्रकाशित है 'Songs of the Sea' के नाम से।

सुब्रहमन्नियम भारती की मदद से श्रीअरविंद ने कुछ तमिल कविताओं का भी अनुवाद किया था। ये साहित्य की कुछ विधाएँ हैं जिनपर श्रीअरविंद ने काम किया। साहित्य की विधाओं में सबसे अधिक नीरस कोई विधा है तो वह है आलोचना या समीक्षा। संस्कृत काव्य शास्त्र, विश्व का सबसे अधिक समृद्ध काव्य शास्त्र है। रस शास्त्र, काव्य शास्त्र, सौंदर्य शास्त्र, इसकी एक लंबी परम्परा है हमारे यहाँ। और श्रीअरविंद का काव्य शास्त्र है, उसकी काव्यमयता, सौंदर्य, सौन्दर्यबोध, उनके काव्य का दर्शन उनके एक ग्रंथ में आया है जिसका नाम है 'The Future Poetry' भविष्य की कविता।

आपको यह जानकर अच्छा लगेगा कि श्रीअरविंद के अनेक ग्रंथ पुस्तक समीक्षा के रूप में शुरू हुए। ग्रंथ बनाने की कल्पना उनके मन में नहीं थी। समीक्षा के रूप में शुरू हुआ और ग्रंथ बन गया। उदाहरण के लिए 'Foundations of Indian Culture' (भारतीय संस्कृति के आधार)। अलग से ग्रंथ लिखने की उनके मन में प्रेरणा नहीं रही होगी, उनके पास समीक्षा के लिए आई सर जॉन वुडरफ की पुस्तक "Is India Civilised'। श्रीअरविंद ने उसकी समीक्षा शुरू की और 'Foundation of Indian Culture' बन गया।

इसी तरह संपरेस्ट एक निबंध उन्होंने पढ़ा और "Human Cycle" जैसा ग्रंथ उन्होंने लिख डाला। इसी तरह जेम्स कजिंस की एक पुस्तक प्रकाशित हुई थी 1917 में, जेम्स कजिंस मद्रास में ही रहते थे, थियोसोफ़िकल सोसाइटी में। एक जानेमाने कवि, आलोचक थे। उन्होंने एक पुस्तक लिखी 'New Age in English Literature'। यह पुस्तक उन्होंने समीक्षा के लिए श्रीअरविंद को भेंट की। "The Future Poetry" के पहले अध्याय में जेम्स कजिंस का जिक्र है। उनकी इस पुस्तक की समीक्षा लिखते-लिखते एक बड़ा ग्रंथ बन गया जो 'आर्य'3 के 32 अंकों में धारावाहिक के रूप में प्रकाशित हुआ। लेकिन श्रीअरविंद के जीवन काल में पुस्तक के रूप में "The Future Poetry" का प्रकाशन नहीं हो सका। The Future Poetry के विषय में श्रीअरविंद कहते थे मैं संशोधन करूँगा, लेकिन इसके लिए समय ही नहीं मिला। जो थोड़े बहुत संशोधन किए उनसे श्रीअरविंद संतुष्ट नहीं थे। अंतत: आश्रम को, जो आर्य में प्रकाशित हुआ था, 32 अंकों में, उसे ज्यों-का-त्यों प्रकाशित करना पड़ा। जिन लोगों की रुचि साहित्य समीक्षा में है, साहित्य के विभिन्न उपादानों में है, साहित्य के विभिन्न तत्वों में है, भाव-विचार-कल्पना-भाषा-छंद-लय में रुचि है, उन्हें यह पुस्तक पढ़नी चाहिए। 1970 में मैंने श्रीमाँ को पत्र लिखा था, क्योंकि मेरी रुचि साहित्य समीक्षा में थी, श्रीमाँ मैं इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद करना चाहता हूँ। उनका आशीर्वाद मिला। इसके सिद्धांतों का मैं अनुवाद कर चुका और तब इसमें अँग्रेजी के करीब 100 उदाहरण थे वहाँ मैं उलझ गया। एक समय निश्चित था इसके लिए। 1972 में सरकार की सहायता से यह अनुवाद छपना था। समय से मैं दे नहीं सका, इसलिए छपा नहीं। फिर बाद में श्रीमती मीरा श्रीवास्तव ने इसका अनुवाद किया। अब यह उपलब्ध नहीं है। थोड़ी बहुत प्रतियाँ थीं, अब लगभग समाप्त हो गई हैं। 'भावी कविता' के नाम से प्रकाशित हुई थी।

यह है विराट गद्य साहित्य, हमारा ध्यान इस तरफ जाना चाहिए था। श्रीअरविंद का बहुत महत्वपूर्ण वर्ष प्रारम्भ हो रहा है – श्रीअरविंद का 150वां जन्म वर्ष। इस वर्ष हम क्या करें? सबके मन में यह प्रश्न है। अभी पिछले सप्ताह विजय भाई का फोन मुझे मिला, उन्होंने कहा जो पुरानी पत्रिकाएँ हैं जैसे श्रीअरविंद मंदिर वार्षिकी, श्रीअरविंद सोसाइटी वार्षिकी, ये अँग्रेजी की पत्रिकाएँ हैं, और आपको आश्चर्य होगा, Mother India जो आज तक निकल रही है, उसका प्रकाशन बॉम्बे से शुरू हुआ था, इस पत्रिका को निकालने की परिकल्पना नवजात जी की थी, इसके प्रकाशित अंक, हिन्दी में प्रकाशित अर्चना पत्रिका, माँ पत्रिका निकलती थी, एक 'माता' निकलती थी, भारत-माता थी, ये हमारे पास हैं कहाँ? शायद पुराने साधकों के पास पड़े होंगे, उनकी सुयोग्य संतानों ने कुछ का उद्धार कर दिया होगा। लेकिन अब भी किसी के पास हो, तो इन्हें सुरक्षित रखिए।

अब आप देखिये हम श्रीअरविंद आश्रम-दिल्ली के सहयोग से यह कार्यक्रम कर रहे हैं। 'अदिति' पत्रिका का प्रकाशन दिल्ली से शुरू हुआ। 1943 फरवरी में पहला अंक निकला। आचार्य अभयदेव इसके संपादक बने

और नाम अदिति रखा श्रीअरविंद ने। आज चाचाजी4 का जन्मदिन है, हमारे लिए बहुत सौभाग्य की बात है। उस समय यह श्रीअरविंद आश्रम नहीं था। तब था श्रीअरविंद निकेतन। श्रीअरविंद निकेतन से इस आश्रम की शुरुवात हुई थी। मैं कहना यह चाहता था कि अदिति के वे पुराने अंक क्या कहीं उपलब्ध हैं? मुझे लगता है कि ये दिल्ली आश्रम में भी नहीं होंगे। त्रियुगी नारायणजी ने कहा था कि इनकी साईक्लोस्टाइल करके हम पुस्तकालय में रखेंगे। क्या वहाँ हैं? मेरा यह आग्रह है आपलोगों से कि इन पुस्तकों को पुरानी नहीं समझें। ये हमारे लिए रत्न हैं, हार हैं। इन्हें सुरक्षित रखें। मैंने अरुण व्यासजी से यह आग्रह किया है और वे मान भी गए हैं और वे प्रयास कर रहे हैं कि वे नोएडा में एक शोध संग्रहालय बनाएँगे। यहाँ पुरानी पत्रिकाएँ, पुराने पत्र, पुराने लेख, पुराना जो कुछ भी है उसे सुरक्षित रखना हमारा दायित्व है। अगर हम इस वर्ष, आगामी वर्ष जिस आयोजन में लगे हुए हैं, यह कार्य कर सकें। अगर हम ऐसा संग्रहालय स्थापित कर सके, यह तो हमारा उत्तरदायित्व है। यह एक बहुत बड़ा काम होगा। मैं ने बहुत समय ले लिया लेकिन मैं कहना चाहता हूँ श्रीअरविंद के गद्य साहित्य के एक-एक पक्ष को लेकर हम विचार-विमर्श करें, चर्चा करें, पढ़ें और आगे बढ़ें। मेरा सहयोग सदैव उपलब्ध है। अगर इन पर विस्तृत चर्चा करनी है तो इनके एक-एक पक्ष के लिए एक अलग गोष्ठी चाहिए। अंत में मैं यह कहना चाहूँगा कि जो पिसा हुआ है उसे ही पीसते न रहें, हमें नई चीजों पर ध्यान देना है जिन पर हमारा ध्यान ही नहीं गया है, ...। मैं फिर कहता हूँ, कई वर्षों से कह रहा हूँ कि श्रीअरविंद की जितनी रचनाएँ हैं उन सबका अभी तक हिन्दी अनुवाद ही नहीं हुआ है। मैं मनोज जी और अपने सब साथियों से कहता हूँ कि अगर हम नहीं करेंगे यह काम तो करेगा कौन? इस शब्दों के साथ मैं आप सबों को धन्यवाद देता हूँ कि आपने मेरी बातों को सुना। इसके लिए आप सबों का आभारी हूँ। धन्यवाद।

1 इन पाँचों नाटकों का हिन्दी में भी अनुवाद हुआ है।

2 अदिति लेखक द्वारा प्रकाशित और संपादित पत्रिका है।

3 'आर्य' पत्रिका श्रीअरविंद ने प्रारम्भ की थी।

4 सुरेन्द्रनाथ जौहर को सब आश्रमवासी चाचाजी कहा करते थे।

"हमें एकता जरूर बनानी चाहिए, लेकिन एकरूपता अनिवार्य नहीं है। यदि मनुष्य पूर्ण आध्यात्मिक एकता का अनुभव कर सकता है, तो किसी प्रकार की एकरूपता की आवश्यकता नहीं होगी; विविधता के अधिकतम खेल उस नींव पर सुरक्षित रूप से संभव होंगे।"

- श्रीअरविन्द

पुनर्जन्म का महत्त्व

-श्रीअरविन्द

पुनर्जन्म के विषय में ऐसे कथन या विचार भी हैं जो जीवन के अधिक भावात्मक अर्थ को स्थान देते और उसके गुप्त स्रोत के रूप में सत्ता के बल पर आनन्द में अधिक तगड़ा विश्वास रखते है; परन्तु अन्त में वे सब के सब मनुष्य को सीमाओं और उसकी इस असमर्थता पर ठोकर खाते हैं कि उसे विश्व-व्यवस्था में इनके बन्धन में से बाहर निकलने का मार्ग नहीं दिखायी देता, क्योंकि वे इसे सनातन काल से निर्धारित वस्तु मानते है, शाश्वतीभ्यः समाभ्यः, चिरकाल विकासशील और सर्जनशील चक्र नहीं अपरिवर्तनशील चक्र। वैष्णवों का यह विचार कि यह ईश्वर की लीला है वस्तुओं के मर्म में रहनेवाले प्रच्छन्न आनन्द पर जा पहुँचता है और इस प्रकार रहस्य के अन्तस्थल में भेदन करने वाली एक ज्योतिर्मयी किरण है, परन्तु वह अकेला ही उसकी सारी गुत्थी को नहीं सुलझा सकता। यहाँ जगत में प्रच्छन्न आनन्द की लीला के अतिरिक्त अधिक कुछ है; ज्ञान है, बल है, एक इच्छा और एक परिश्रम है । इस प्रकार देखने से पुनर्जन्म भगवान की एक मौज का रूप अत्यधिक ले लेता है जिसका लक्ष्य उसकी क्रीड़ा को छोड़ और कुछ न हो, परन्तु हमारा जगत् इतना अधिक बड़ा और श्रमपूर्ण है कि उसकी व्याख्या इस तरह नहीं की जा सकती। हमारी संभूति को जो उतार-चढ़ाव वाला आनन्द दिया जाता है, वह लुका-छिपी और खोज का खेल है, यहाँ उसकी किसी दिव्य संपूर्ति की आशा नहीं है; उसके वृत्त अन्त में यात्रा के योग्य नहीं लगते और जीव इस खेल की असन्तोषप्रद भूलभूलैयों में से मुक्ति पाने की ओर ही प्रसन्नता से मुड़ता है। तान्त्रिक समाधान हमें एक परमा-अतिचेतन ऊर्जा की बात कहता है जो यहाँ बहुसंख्यक जगतों और कोटि संख्यक भूतों में अपने-आपको डालती है और उसकी व्यवस्था में जीव जन्म-जन्मांतर में उठता जाता है और उसके लाखों रूपों का तब तक अनुसरण करता है, जब तक कि अन्त में वह मानवीय धाराक्रम में अपने स्वीय दिव्यत्व की चेतना तथा शक्तियों की ओर खुल न जाय और उनके द्वारा द्रुत आलोकीकरण से शाश्वत अतिचेतना की ओर वापस न चला जाय। अन्त में हमें एक सन्तोषप्रद समन्वय का आरम्भ, अस्तित्त्व का कुछ औचित्य, पुनर्जन्म में एक अर्थपूर्ण परिणाम, विश्व की महान् गतिधारा के लिए एक उपयोग और एक अस्थायी ही सही, परन्तु पर्याप्त सार्थक्य मिलता है। आधुनिक मन जब पुनर्जन्म को स्वीकार करने की ओर झुकता है तो वह पुनर्जन्म को बहुत कुछ इन जैसी ही रेखाओं पर देखना चाहता है। परन्तु यहाँ जीव की दिव्य सम्भावनाओं पर बहुत ही हल्का जोर दिया गया है, यहाँ से बच निकलकर अतिचेतना में पहुँचने के आग्रह में उतावली बरती गयी है; इतने संक्षिप्त और इतने अपर्याप्त प्रस्फुटन के लिए परमा ऊर्जा लम्बी और दीर्घकाय तैयारी की रचना करती है। यहाँ कोई रिक्त स्थल है, कोई रहस्य अभी भी अज्ञात है ।

हमारे अपने विचार की कुछ सीमाएँ हैं जिन पर ये सारे समाधान ठोकर खाते हैं, और इन बाधाओं में प्रमुख हैं हमारी विश्व के यान्त्रिक स्वरूप को भावना और अपने वर्तमान मानवीय प्रारूप से श्रेष्ठतर प्रारूप की ओर आगे देख पाने में हमारी अक्षमता। हम अति-चेतन आत्मा को उसकी दीप्ति और स्वतन्त्रता में देखते हैं और विश्व को उसके यान्त्रिक पुनरावर्तनों के चक्र के निश्चेतन बन्धन में, या हम अस्तित्व को अमूर्त सत्ता और प्रकृति को यान्त्रिक शक्ति की तरह देखते हैं; चेतन अन्तरात्मा इन दोनों विपरीतों के बीच कड़ी की तरह होता है, परन्तु स्वयं वह इतना असम्पूर्ण है कि हमें इस कड़ी में वह रहस्य नहीं मिल सकता, न ही हम उसे समन्वयन

के सबल स्वामी के रूप में अपना सकते हैं। तब हम जन्म को अन्तरात्मा की भूल घोषित करते हैं और अपनी मुक्ति का एकमात्र सुयोग इन जन्मजात बन्धनों को उतार फेंकने और विश्वातीत चेतना की ओर या अमूर्त सत्ता को स्वतन्त्रता की ओर उग्र अत्क्रमण में देखते हैं। परन्तु यदि पुनर्जन्म सचमुच कोई लम्बी घसीटती जंजीर न रहकर बल्कि आरम्भ में अन्तरात्मा के आरोहण का सोपान हो और अन्त में महान् आध्यात्मिक अवसरों का अनुक्रम, तो क्या होगा? और, पुनर्जन्म का तथ्य ऐसा ही होगा यदि अनन्त सत्ता वैसी न हो जैसी वह तार्किक बुद्धि को लगती है, यदि वह अमूर्त सत्ता न हो प्रत्युत् वैसी हो जैसी वह संबोधि की ओर गंभीरतर आध्यात्मिक अनुभव में दिखती है, यदि वह आध्यात्मिक चिन्मयी सद्वस्तु हो और वह सद्वस्तु यहाँ भी उतनी ही वास्तव हो जितनी किसी भी सुदूर अतिचेतना में। कारण, तब विश्वप्रकृति कोई ऐसा यन्त्र-विन्यास नहीं रह जायगी जिसका अपनी निश्चेतन यन्त्र-विधि को छोड़कर कोई और रहस्य न हो और जिसमें अपनी पुनरावर्त्ति का क्रियावत्ता को छोड़कर कोई और अभिप्राय न हो; वह तब अपनी प्रक्रियाओं की महिमा में महिमानम् अस्य-छिपे विश्वात्मा की चेतन ऊर्जा होगी। और, जड़तत्व की निद्रा में से, वनस्पति और पशु- जीवन में से होकर जीवन-शक्ति की मानवीय कोटि में ऊपर उठता हुआ और वहाँ अपने शाही और अनन्त राज्य पर अधिकार करने के लिए अज्ञान और सीमा से लोहा लेता हुआ अन्तरात्मा वह मध्यस्थ होगा जो प्रकृति की सूक्ष्मताओं और वृहत्ताओं में छिपे अध्यात्मतत्व को प्रकृति में प्रस्फुटित करने के लिए नियुक्त हुआ है। यही जीवन तथा जगत् का सार्थक्य है जिसे क्रमवैकासिक पुनर्जन्म का विचार हमारे सामने खोलता है; जीवन तब तत्काल ही 'अध्यात्म तत्व' के प्रस्फुटन के लिए प्रगतिशील ऊर्ध्वमुख धाराक्रम हो जाता है। वह परम सार्थक्य से युक्त हो जाता है। उसके शक्तिरूप में अध्यात्म-तत्व की रीति का औचित्य प्रमाणित होता है, वह तब कोई बुद्धिहीन और खोखला स्वप्न, कोई शाश्वत उन्माद , महत् यान्त्रिक श्रम या अन्तहीन व्यर्थता नहीं रह जाता, वरन् एक विशाल आध्यात्मिक इच्छा एवं प्रज्ञा के कार्यों का जोड़ हो जाता है: मानव-अन्तरात्मा और विश्वात्मा एक उदात्त और दिव्य अर्थ से एक दूसरे की आँखों में देखते हैं।

हमारे अस्तित्व को घेरने वाले प्रश्नों की व्याख्या अब तुरन्त ही एक निश्चित सन्तोषप्रद परिपूर्णता से हो जाती है। हम तो विश्वातीत आत्मा तथा पुरुष का वह अन्तरात्मा ही जो अपने-आपको विश्व में सतत क्रम वैकासिक शरीर धारण में प्रस्फुटित कर रहा है जिसका शारीरिक रूप आकार का एक पादपीठ मात्र है जो अपने विकासक्रम में अध्यात्म की ऊपर उठती कोटियों के समकक्ष होता है, परन्तु यथार्थ भाव और प्रेरक हेतु आध्यात्मिकवर्द्धन ही होता है। हमारे पीछे हैं आध्यात्मिक विकासक्रम के अतीत के सत्र, अध्यात्मतत्व की ऊपर उठती श्रेणियाँ जिनका आरोहण किया जा चुका है, जिनसे हम निरन्तर पुनर्जन्म द्वारा विकसित होते हुए वह हो गये हैं जो हम हैं, और अभी भी आरोहण के इस वर्तमान और बीच के मानवीय सत्र का विकास कर रहे हैं। उस प्रस्फुटन के वैश्व रूप की सतत प्रक्रिया ही हमारे चारों ओर है: भूतकाल के सत्र उसमें समाए हुए हैं, परिपूरित हुए हैं, हमारे द्वारा उनका अतिक्रमण हुआ है, परन्तु सर्वसामान्य और विविध प्रारूप में वे तब भी आधार तथा पृष्ठभूमि की तरह पुनरावृत्त होता है; वर्तमान सत्र वहाँ अलाभदायी पुनरावर्तन की तरह नहीं, वरन् जो कुछ भी अतीत के तत्व द्वारा प्रस्फुटित किया जाना है उसकी सक्रिय गर्भावस्था की तरह हैं, सर्वदा अंकों को असहाय रूप से पुनरावृत्त करते अयोक्तिक दशामालविक पुनरावर्तन की तरह नहीं, वरन् 'अनन्त' की शक्तियों के विस्तृत होते धाराक्रम की तरह। हमारे सामने है महत्तर शक्यताएं, वे सोपान जिन पर हम अभी तक चढ़े नहीं है, वे साश्वत-तर अभिव्यक्तियाँ जो अभिप्रेत है। अध्यात्म-तत्व के ऊर्ध्वमुख आत्म-प्रस्फुटन का यह साधन होना ही हमारे यहाँ होने का कारण है। अपने प्रति और अपने सार्थक्यों के प्रति हमारा कर्त्तव्य है विकसित होना और उन्हें दिव्य सत्ता, दिव्य चेतना, दिव्य शक्ति, दिव्य आनन्द तथा बहुगुणित एकत्व के महत्तर सार्थक्यों की

ओर उन्मीलित करना, और अपने परिवेश के प्रति हमारा कर्त्तव्य है उसे आध्यात्मिक हेतुओं के लिए चेतन रूप से प्रयुक्त करना और विश्व में भगवान् के पूर्ण स्वरूप और आत्म-कल्पना के आदर्श प्रस्फुटन के लिए उसे अधिकाधिक एक साँचा बनाना। अवश्य ही यही वस्तुओं के अन्दर रहने वाली वह इच्छा है जो अपनी ही सान्स आकृतियों को अपनी ही अनन्त 'सद्वस्तु' से अधिकाधिक अनुगर्भित करने की ओर महान् और सज्ञान, धीर और अविश्वामशील रहती हुई, किन्हीं भी चक्रों से होकर बढ़ती है।

यह सब वर्तमान की आकृतियों में रहने वाले मन के लिए, जैसा कि प्रत्यक्षवादी अनुसंधान में सलग्न सतर्क संशयात्मक मन के लिए होना ही चाहिए, प्रभ्युपगम से अधिक कुछ नहीं, क्योंकि क्रमविकास यदि स्वीकृत विचार है तो भी पुनर्जन्म तो अनुमान मात्र है। ऐसा मानने पर भी यह उन सरल और बालोचित धार्मिक समाधानों से बेहतर अभ्युपगम है जो जगत् को एक सर्वशक्तिमान् मानवीय मनोधर्मी स्रष्टा की मनमौज और मनुष्य को उसकी श्वास लेती मिट्टी की कठपुतली बना देते हैं और, कम से कम, उस विचार के जितना अच्छा अभ्युपगम है जिसके अनुसार एक जड़ और नश्चेतन शक्ति चेतना के अनिश्चित और क्षणभंगुर, फिर भी अविच्छिन्न व्यापार में किसी भाँति संयोग से पहुँच गयी है, या जैसा कि बगंसन का सिद्धान्त है, एक सृजनशील प्राण विश्वव्यापिनी मृत्यु के बीच उत्पीड़ित होकर परिश्रम कर रहा है, परन्तु सतत विद्यमान है, या उस विचार के जितना अच्छा है जिसके अनुसार प्रकृति, माया या शक्ति की यान्त्रिक क्रिया हो रही है और वास्तविक या अवास्तविक व्यक्ति उसमें या उसके भीतर संयोग से पहुँच जाता या अन्धे के द्वारा ले जाये जाते अन्धे की तरह तब तक भटकता रहता है, दन्द्रम्यमाण: अन्धेनैव नीयमानो यथान्धः, जब तक कि वह आध्यात्मिक मुक्ति द्वारा उसमें से बाहर न निकल सके। असंकीर्ण दार्शनिक जिज्ञासा को यह बात अस्तित्व की ज्ञात रेखाओं से बेमेल नहीं लगेगी, सत्ता के तथ्यों तथा आवश्यकताओं या युक्तिबुद्धि और संबोधि की माँगों से विस्वर नहीं लगेगी, भले ही वह एक ऐसे तत्व को मानना है जो अब तक अनुपलब्ध है, ऐसी वस्तुओं को मानना है जिन्हें अभी भी होना बाकी है, क्योंकि यह बात विकासक्रम के तो विचार में ही अन्तर्निहित रहती है। यह बात धार्मिक अनुभव या अभीप्सा में कुछ परिवर्तन ला सकती है, किन्तु उनमें किसी का भी आमूल प्रत्याख्यान नहीं करती, क्योंकि वह न तो स्वर्गलोक में अतिचेतना अथवा आनन्द के साथ ऐक्य होने से, न भगवान् के साथ किसी व्यक्ति अथवा निर्व्यक्तिक सम्बन्ध होने से असंगत है, क्योंकि ये चीजें आध्यात्मिक प्रस्फुटन की चोटियाँ भलीभाँति हो सकती हैं। इसका सत्य निर्भर करेगा आध्यात्मिक अनुभव तथा कार्यान्वयन पर, किन्तु मुख्यतः इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर, "क्या मनुष्य की आन्तरात्मिक क्षमताओं में कोई ऐसी वस्तु है जो उसकी सत्ता के लिए वर्तमान मनःशक्ति से महत्तर किसी अन्य तत्व की आशा देती है और क्या उन महत्तर तत्व को उसके शरीरी जीवन के लिए प्रभावी बनाया जा सकता है?" यही वह प्रश्न है जिसे मनोवैज्ञानिक समीक्षा से जाँचना बाकी रह गया है, यही वह समस्या है जिसे मनुष्य के आध्यात्मिक क्रमविकास के दौरान सुलझाना है।

इस प्रकार की क्रमवैकासिकी अभिव्यक्ति की दार्शनिक आवश्यकता, सम्भावना और सुनिश्चित वास्तविकता के अतितात्विक प्रश्न भी है, किन्तु उन्हें यहाँ और अभी लाने की आवश्यकता नहीं है। इस समय पुनर्जन्म से हमारा सम्बन्ध केवल अनुभव के सन्दर्भ में उसकी वास्तविकता और उसके धारावाहिक सार्थक्य से, इस स्पष्ट वास्तविकता से है कि हम किसी प्रकार की अभिव्यक्ति के अंग हैं और किसी प्रकार के क्रमविकास के चाप के नीचे आगे बढ़ रहे हैं। हमें एक शक्ति क्रियारत दिखती है और हम यह जानना चाहते हैं कि उस शक्ति में कोई सचेतन इच्छा, कोई व्यवस्थित विकास है या नहीं, और हमें पहले यह खोजना होता है कि यह किसी संगठित यदृच्छा या निश्चेतन स्व-बाधित अन्धे विधान का परिणाम है या कि विश्वव्यापी बुद्धि या प्रज्ञा की योजना। एक

बार जब हम यह देख लेते हैं कि एक चिदात्मा है और यह गतिधारा उसकी एक अभिव्यंजना है, या यदि हम इसे अपने कार्यकारी अनुमान के रुप में भी स्वीकार कर लेते हैं, तो हम आगे बढ़ने और यह पूछने को बाध्य होते हैं कि क्या यह विकसित होता क्रम मनुष्य की वर्तमान अवस्था पर समाप्त हो जाता है, या कि उसके गर्भ में और कुछ भी है जिसकी ओर इस क्रम और मनुष्य को बढ़ना है, जो एक असमाप्त प्राकट्य है, एक महत्तर अप्राप्त पर्व है, और ऐसा हो तो यह स्पष्ट है कि मनुष्य उसी महत्तर वस्तु की ओर ही बढ़ रहा होगा; उसकी तैयारी और उसकी उपलब्धि ही उसकी नियति में आगे आनेवाला चरण होगी। क्रमविकास के उस नये डग की ओर ही उसका जातीय इतिहास अवचेतन रूप से प्रवृत्त हो रहा होगा और श्रेष्ठतम व्यक्तियों की क्षमताएँ इस महत्तर जन्म को सम्पन्न करने के लिए ही अर्ध-चेतन रूप से उद्योग कर रही होंगी; और चूंकि पुनर्जन्म का ऊर्ध्वमुख क्रम सदा ही क्रमविकास की श्रेणियों का अनुसरण करता है, उसके लिए भी यह अभिप्रेत नहीं हो सकता कि वह अभीष्ट डग की ओर कोई ध्यान न देकर रुक जाय या अकस्मात् मुड़कर अतिचेतना में चला जाय। चेतना के अन्य स्तरों पर जो जीवन है उसके साथ और जो कोई भी विश्वातीत अतिचेतना हो उसके साथ हमारे जन्म के सम्बन्ध के विषय की समस्याएँ महत्वपूर्ण हैं, परन्तु उनका समाधान अवश्य ही ऐसा कुछ होना चाहिये जिसका विश्वगत 'अध्यात्म-पुरुष' के अभिप्राय से सामंजस्य हो; सब कुछ को एक एकत्व का अंग होना चाहिये, न कि आध्यात्मिक असम्बद्धताओं और अंसगतियों की उलझन। इस विचारधारा में ज्ञात से अज्ञात की ओर हमारा पहला सेतु यही अविष्कार होगा कि क्रमविकास का अभी तक असमाप्त रहने वाला सोपान पार्थिव धाराक्रम में कितनी दूर तक ऊपर जा सकता है। इस आविष्कार का अभी तक प्रयत्न नहीं किया गया है, किन्तु हो सकता है कि पुनर्जन्म का सारा धारावाहिक सार्थक्य इसी एक बात में लिपटा पड़ा हो।

"प्रभु! आपने हमारी गुणवत्ता के परीक्षण करने का निश्चय किया है और हमारी सचाई को अपनी कसौटी पर परख रहे हो, हम पर कृपा करना कि हम इस परीक्षण पर और अधिक महत्तर एवं निर्मलता से खरे साबित हों।"

-श्रीमाँ

स्वप्न

-श्रीअरविंद

(यह कहानी मूल रूप से बंगला में लिखी गई थी । यहाँ उसके हिन्दी अनुवाद के कुछ अंश दिये जा रहे हैं) एक दरिद्र अंधेरी कोठरी में बैठा अपनी शोचनीय अवस्था और भगवान राज्य में अन्याय-अविचार की बातें सोच रहा था। दरिद्र (हरिमोहन) अभिमान से वशीभूत हो कहने लगा,

"लोग कर्म की दुहाई दे भगवान् के सुनाम की रक्षा करना चाहते हैं । यदि गत जन्म के पाप से मेरी यह दुर्दशा हुई होती, यदि मैं इतना ही पापी होता तो निश्चय ही इस जन्म में भी मेरे मन में पाप चिंतन का स्रोत बहता होता, इतने घोर पातकी का मन क्या एक दिन में निर्मल हो सकता है? और उस पाड़े के तीन कौड़ी शील को तो देखो , उसकी धन दौलत , सोना - चांदी , दास - दासियों को देखो , यदि कर्मफल सत्य हो तो निःसन्देह वह पूर्व जन्म में कोई जगद्विख्यात साधु- महात्मा रहा होगा । परन्तु कहाँ , इस जन्म में तो उसका चिह्न तक नहीं दिखायी देता। ऐसा निष्ठुर पाजी बदमाश तो संसार में दूसरा नहीं । नहीं , कर्मवाद है भगवान की ठग विद्या , मन भुलाने का बहाना मात्र । श्यामसुन्दर बडे चतुर चूड़ामणि हैं , मुझे पकड़ाई नहीं देते , इसी से खैर है , नहीं तो ऐसा सबक सिखाता कि सब चालाकी भूल जाते ।"

(हरिमोहन भगवान को चाबुक से मरने की इच्छा मन में रख कर सो जाता है। स्वप्न में भगवान बाल कृष्ण के रूप में प्रकट होते हैं । कहानी आगे बढ़ती है , बाल कृष्ण कह रहे हैं)

"देखो हरिमोहन, जो मुझ से भय न कर मुझे अपना सखा मानते हैं , स्नेहभाव से गाली देते हैं , मेरे साथ क्रीड़ा करना चाहते हैं, वे मुझे बहुत ही प्रिय है। मैंने क्रीड़ा के लिए ही जगत् की सृष्टि की है। मैं सर्वदा इस क्रीड़ा का उपयुक्त साथी खोजता रहता हूँ। परन्तु भाई, ऐसे साथी मिलते कहाँ है? सभी मुझपर क्रोध करते हैं, दावा करते हैं, दान चाहते हैं, मान चाहते हैं, मुक्ति चाहते हैं, भक्ति चाहते हैं, न जाने क्या-क्या चाहते रहते हैं, किन्तु कहाँ, मुझे तो कोई नहीं चाहता! जो कुछ ये चाहते हैं वही दे देता हूँ। क्या करूं, इन्हें सन्तुष्ट रखना ही पड़ता है, नहीं तो ये मेरी जान के ग्राहक बन जायें। देखता हूँ, तुम भी कुछ चाहते हो। नाराज होने पर चाबुक मारने के लिए तुम्हें एक आदमी चाहिये, इसी साध को मिटाने के लिए तुमने मुझे बुलाया है । लो, चाबुक

लिए तुम्हें एक आदमी चाहिये , इसी साध को मिटाने के लिए तुमने मुझे बुलाया है । लो , चाबुक की मार सहने के लिए मैं आ गया — ये यया मां प्रपद्यन्ते तांस्तयैव भजाम्यहम् । फिर भी प्रहार करने के पहले यदि तुम मेरे मुंह से कुछ सुनना चाहो तो मैं तुम्हें अपनी प्रणाली समझा दूं । क्यों , राजी हो ?"

(हरिमोहन एवं बालकृष्ण के मध्य लंबा संवाद होता है। बाल कृष्ण उसे अपनी योग शक्ति से उसे कई अनदेखी घटनाएँ और लोग दिखते हैं। उनका जीवन कैसा दिखता है और वास्तव में कैसा है? उसके अपने मुहल्ले के तिन कौड़ी के अलावा, साधू, बाघ के जीवन का भी दर्शन कराते हैं । संसार को उनके जीवन में जो दिखता है लेकिन जब हरिमोहन के सामने उनके जीवन की अन्य गुत्थियाँ खुलती है तब समझता है कि असल

क्या है और नकल क्या है।)

"मैं सभी खेल पसन्द करता हूँ, चाबुक लगाना भी और चाबुक खाना भी ।" ... देखो हरिमोहन, तुम लोग केवल बाहर का ही देखते हो, भीतर का देखने की सूक्ष्म दृष्टि अभी तक विकसित नहीं की है। इसीलिए कहते हो कि तुम दुखी हो और तिन कौड़ी सुखी। इस आदमी को किसी भी पार्थिव वस्तु का अभाव नहीं- फिर भी यह लखपती तुम्हारी अपेक्षा कितनी अधिक दुःख - यंत्रणा भोग रहा है। ऐसा क्यों ? बता सकते हो ? मन की अवस्था में ही सुख है और मन की अवस्था ही दुःख। सुख और दुख मन के विकार मात्र हैं। जिसके पास कुछ नहीं, विपदा ही जिनकी सम्पदा, वह अगर चाहे तो उस विपत्ति में भी परम सुखी हो सकता है । और देखो, जिस तरह तुम नीरस पुण्य में दिन बिताते हुए सुख नहीं पा रहे हो, केवल दुःख का ही चिन्तन करते रहते हो , उसी तरह ये भी नीरस पाप में दिन बिताते हुए केवल दुःख का ही चिंतन करते हैं । इसीलिए पुण्य से केवल क्षणिक दुःख और पाप से केवल क्षणिक सुख मिलता है। इस द्वन्द्व में आनन्द नहीं। आनन्द सागर की छवि तो मेरे पास है। जो मेरे पास आता है , जो मेरे प्रेमपाश में बंधता है , मुझे साधता है , मुझपर जोर-जुल्म करता है, अत्याचार करता है वह मेरे आनन्द की छवि को वसूल करता है। "

अभी भी जो तुम नीरस पुण्य करते हो उसका कारण यही है कि केवल स्वप्न - जगत के भोग से पाप-पुण्य का सम्पूर्ण क्षय नहीं होता, इनका सम्पूर्ण क्षय तो पृथ्वी पर कर्मफल भोगने से ही होता है। तीन कौड़ी गत जन्म में दाता कर्ण थे , हजारों व्यक्तियों के आशीर्वाद से इस जन्म में लखपती हुए हैं , उन्हें किसी वस्तु का अभाव नहीं , परन्तु उनकी चित्तशुद्धि न होने के कारण उन्हें इस समय अपनी अतृप्त कुप्रवृत्तियों को पाप कर्मों द्वारा तृप्त करना पड़ रहा है ।..... कर्मवाद समझ गये क्या ? न तो यह पुरस्कार है न दंड यह है अमंगल द्वारा अमंगल की और मंगल द्वारा मंगल की सृष्टि नियम यह है कि प्रकृति का पाप अशुभ है , उसके द्वारा दुःख की सृष्टि होती है ; पुण्य शुभ है , उसके द्वारा सुख की सृष्टि होती है । यह व्यवस्था चित्त की शुद्धि के लिए अशुभ के विनाश के लिए की गयी है । देखो हरिमोहन , पृथ्वी मेरे वैचित्र्यमय जगत का एक अति क्षुद्र अंश है , किन्तु कर्म द्वारा अशुभ का नाश करने के लिए तुम लोग यहाँ जन्म ग्रहण नीरस करते हो ।

जब पाप - पुण्य के हाथों परित्राण पा तुम लोग प्रेम - राज्य में पदार्पण करते हो तब इस कार्य से छुटकारा पा जाते हो । अगले जन्म में तुम भी छुटकारा पा जाओगे ।...

बालक ने हंसते हुए कहा- “हरिमोहन, कुछ समझा?" हरिमोहन ने उत्तर दिया- "समझा क्यों नहीं ? "इसके बाद उसने कुछ सोचकर कहा- "अरे कन्हैया, तूने फिर मुझे ठगा। अशुभ का सृजन तूने क्यों किया इसकी तो कोई कैफियत दी ही नहीं। "इतना कह उसने बालक का हाथ पकड़ लिया। बालक ने अपना हाथ छुड़ा हरिमोहन को धमकाते हुए कहा- “दूर रहो, घंटे भर में ही मेरी सभी गुप्त बातें कहला लेना चाहते हो? "इतना कह बालक ने हठात् दीपक बुझा दिया और हरिमोहन से कुछ दूर हटकर हंसते हुए कहा- "क्यो हरिमोहन, चाबुक मारना तो तुम एकदम भूल ही गये। इसी भय से मैं तुम्हारी गोद में नहीं बैठा, कहीं तुम बाह्य दुःख से क्रुद्ध हो मेरी खबर न लेने लगो। मुझे तुमपर जरा भी विश्वास नहीं। "

हरिमोहन ने अंधकार में अपना हाथ बढ़ाया, किन्तु बालक और दूर हट गया, बोला "नहीं, यह सुख मैं तुम्हारे दूसरे जन्म के लिए बाकी रख छोड़ता हूँ। अच्छा अब चला। "इतना कह उस अंधेरी रात में बालक न जाने कहाँ

अदृश्य हो गया। हरिमोहन उसकी नूपुर ध्वनि सुनते-सुनते जाग उठा। जागकर उसने सोचा, "यह कैसा स्वप्न देखा! नरक देखा, स्वर्ग देखा, और भगवान् को 'तू' कहा, छोटा-सा बालक समझ कितना डाँटा, डपटा! कैसा पाप किया । परन्तु जो हो, प्राण में अपूर्व शान्ति का अनुभव कर रहा हूँ। "हरिमोहन अब उस कृष्णवर्ण बालक की मोहिनी मूर्ति को स्मरण करने लगा और बीच-बीच में कहने लगा : "कितनी सुन्दर, कितनी सुन्दर ! "

-श्रीमाँ

मीरा का मर्यादाश्रेष्ठ विद्रोह

-महादेवी वर्मा

मैं अपने को मीरा की उपासिका मानती हूँ । मुझको याद है कि मेरे बचपन के समय मेरी माता मीरा के पद गाया करती थी। मीरा का एक प्रसिद्ध पद है, "सुनि मैं हरि आवन की आवाज।" मेरी माँ इस पद को बार-बार गुनगुनाती थी। एक बार मैंने अपनी माँ से पूछा कि आवाज को क्या तुम सुनती हो, माँ ? तब मेरी माँ ने कहा, "इसको सुनने के लिए बहुत शांत और एकाग्र-चित्त बनना पड़ता है ।" यह सुनकर मैं आँखें बंद कर बैठी रह। फिर भी मुझे यह आवाज सुनायी नहीं दी । मैंने अपनी माँ से शिकायत की कि मुझे तो कोई आवाज ही सुनायी नहीं देती। मेरी माँ ने तब कहा था कि किसी दिन आगे चलकर यह आवाज मुझे सुनायी देगी और सचमुच मेरी माँ का यह आशीर्वाद सही निकला और यह आवाज सुनायी देती है, जब मन पूर्णतः शांत एवं एकाग्र रहता है।

मीरा शाश्वत नारी का प्रतीक है। मीरा सनातन भारतीय नारी की कथा है उसका प्रत्येक चरण संघर्ष की एक कहानी है। उसने अपने अभीष्ट कर्तव्य के लिए दृढ़तापूर्वक सभी विषम परिस्थितियों का सामना किया था और तत्कालीन समाज के प्रति अपने तेजस्वी विद्रोहिणी स्वरूप को उजागर किया है।

मीरा मध्य युग की नारी है। मध्य युग में अंधकार और आलोक दोनों का मिश्रण रहा है। इस काल में नारी की स्थिति शोचनीय थी। उस समय नारी के पास मुख ही नहीं था। उसको कहने, सुनाने तथा वाक्-अभिव्यक्ति के लिए कोई आज़ादी ही नहीं थी। मध्ययुग की नारी 'अनबोली' महिला थी, जिसका कोई चित्र ही नहीं बन सकता । उस युग में नारी की कोई स्थिति ही नहीं थी, अनबोले ही नारी उस युग में चरम बलिदान देती थी। मीरा अंधकारपूर्ण युग में उत्पन्न हुई, कठोर पाषाणों के प्राचीरों के बीच उसके सुख के सभी साधन जुटाये गये थे। किंतु मीरा का जन्म भौतिक, राजसी सुख-सुविधा के भोग हेतु निर्मित नहीं था। मीरा ने राजसी सुख की प्राचीरों के बीच रहकर अपने परम आराध्य 'गिरिधर गोपाल' का हाथ पकड़ा और सभी राजसी सुख-सुविधाएँ तथा तत्कालीन मर्यादाओं को छोड़कर वह जन-जन के बीच निकल आयी। अपने तंबूरे पर 'गिरिधर गोपाल' की अलख जगाते हुए कंटकाकीर्ण जनपथ पर चल पड़ी। जहाँ-जहाँ इस परम विद्रोहिणी भक्तश्रेष्ठ मीरा के चरण पड़े, वहाँ-वहाँ भक्ति के पवित्र प्रसून खिल गये।

ऋग्वेद के कतिपय सूक्तों में मुझे भक्तिभावना के दर्शन हुए और मुझको यह साम्य देखकर बड़ा आश्चर्य होता है कि भक्तवाणी भी ऋषि-ऋचाओं के समान मर्मस्पर्शी है। ऋषिगण ज्ञान के माध्यम से जो संकेत देते हैं, भक्तजन भावना से वही सत्य प्रकट करते हैं। मुझको तो ऐसा प्रतीत होता है कि भक्ति-आंदोलन का प्रादुर्भाव वरुण-सूक्तों से चला आ रहा है। हम चेतना और विराट् चेतना के बीच तादात्म्य स्थापित करने की खोज में लगे रहे हैं। भक्ति-आंदोलन का हमारा भारतीय संस्कृति के निर्माण में सर्वोपरि प्रभाव है। इस भक्ति-आंदोलन में मीरा की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

मीरा के पद आत्मतादात्म्यक् हैं। स्वयं मीरा तो साक्षात् साकार प्रेममयी है, वह साकार प्रेम की लपट है, ज्योति है, जिसमें कालिमा, कटुवचन, बुराई की कोई गुंजाइश ही कैसे रह सकती है। वह बिलकुल ज्योतिर्मयी है। उसके काव्य में एक आलोक है, एक विद्युत् है, जिसमें कहीं पर भी किसी के प्रति कोई दुर्भावना नहीं है।

यद्यपि संतों ने यदा-कदा समाज और शास्त्रों को भला-बुरा भी कहा है। किंतु मीरा ने केवल मधुर रस बहाया है। बल्कि उसके पास माधुर्य के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं । मीरा तो माधुर्यपूर्ण श्रेष्ठ भक्ति नारी है। सर्वांग प्रेममयी , मधुर , साक्षात् राधास्वरूपा।

मीरा का गीत है , "कोई कहे मीरा भई रे बावरी, कोई कहे कुलनासी रे।" उसे लोगों ने क्या-क्या नहीं कहा होगा? मगर उसने किसी को भला-बुरा नहीं कहा। जो कुछ उसके सामने आया, उसको उसने श्रीकृष्ण का प्रसाद समझकर सब स्वीकार कर लिया । मीरा तो प्रेमरस की वह प्राणवान् बदली है, जिसने सदैव प्रेमरस की ही वर्षा की है। उसके पास प्रेम के अलावा अन्य कोई भाव था ही नहीं ।

मीरा ने अपने प्रभु प्राप्ति के लिए रास्ते में आनेवाली सभी रुकावटों, मर्यादाओं और औपचारिकता के प्रति मधुर विद्रोह प्रकट किया है। वह मूलतः विरहिणी है, उसका लक्ष्य तो गिरिधर गोपाल की उपलब्धि मात्र है उसका विद्रोही स्वरूप तो इस परम लक्ष्य प्राप्ति के बीच पड़नेवाली इन रुकावटों के प्रति है। इस प्रकार मीरा का विद्रोह भी अनुपम है, अद्वितीय है। उसने गोपाल-तादात्म्य की बड़ी मर्यादा की रक्षा के लिए रास्ते में आनेवाली सभी छोटी-मोटी रुकावटी सीमाओं के प्रति मधुर विद्रोह प्रकट किया है, इसलिए मीरा के विद्रोह को भी हम "मर्यादाश्रेष्ठ विद्रोह" कह सकते हैं। उसने सनातन नारी की मर्यादाओं का सहज भाव से पालन किया है। प्रेम, करुणा, भक्ति, कर्तव्य, ब्रह्मचर्य, संयम तथा अपरिग्रह के उदात्त गुणों को अपने जीवन में उतारा है और साहस, धैर्य तथा अद्वेष के साथ तत्कालीन सभी अभिशापों को हँसते हुए झेला है।

मध्ययुग के पाषाणी युग में मीरा मेवाड़ राजनंदिनी थी, यशस्वी मेवाड़ के राजघराने की वह सजीली राजवधू थी। मर्यादा, लोक-बंधन तथा कट्टर पाषाणी समाज में मीरा का करताल लेकर राजप्राचीर से बाहर निकलना तथा जन-जन के साथ मिलकर अपने प्रियतम गिरिधर गोपाल के प्रेम का नक्कारा पीटना तत्कालीन समाज के विरुद्ध भीषण एवं गंभीर विद्रोह था। उसने हलाहल को स्वीकार किया, निर्वासन को भोगा, उसको विषम संघर्षों के बीच गुज़रना पड़ा, तब भी वह अपने आराध्य में तन्मय रही। ऐसी कोई समर्थ, वीरांगना, विद्रोहिणी नारी अब तक मुझे तो नहीं मिली।

मध्ययुग में मीरा की यह अहिंसक लड़ाई अद्भुत ही थी। मीरा की चुनौती समग्र समाज के प्रति थी। वह संपूर्ण युग के खिलाफ लड़ी, पूर्ण माधुर्य के साथ। और इस प्रकार मीरा की लड़ाई तो इतिहास में बेमिसाल है, अद्वितीय है। उसकी उपासना में एक ऐसा माधुर्य था कि तत्कालीन शक्ति के जो अधिष्ठाता थे, उन सबको मीरा ने एकदम मौन कर दिया। जो लोग केवल ज्ञान को ही महत्त्व देते थे, उनको भी मीरा ने अपने गिरिधर गोपाल के प्रेम में ऐसा सराबोर कर दिया कि वास्तव में कोई यह समझ ही नहीं सका कि मीरा क्या कहती है, और उसके कहने में क्या नवीनता है। मीरा के काव्य की विशेषता तो यही है कि मीरा को भाव अभिव्यक्ति हेतु किसी माध्यम की जरूरत ही महसूस नहीं हुई। उसने कोई नया माध्यम खोजा ही नहीं। ईश्वर और हमारे बीच क्या माध्यम हो सकता है? माध्यम की जरूरत ही क्या है? उसने तो गिरिधरगोपाल कृष्ण को अपनी आँखों, वाणी और हृदय में बसा लिया-जिसके सिर पर मोरमुकुट है, हाथ में बाँसुरी है। इस कृष्ण को अपने साथ लेकर, मीरा करताल बजाकर नाच पड़ी। मीरा के साथ कृष्ण भी बाँसुरी में स्वर भर उसके साथ नाच रहे हैं। मीराकृष्ण का यह सहनृत्य मीरा के काव्य में परिलक्षित होता है। इस अलौकिक तन्मयता के दर्शन मुझे मीरा के सिवा किसी अन्य के काव्य में नहीं होते हैं। इसलिए मेरी दृष्टि में मीरा की साधना अद्वितीय है। कृष्णसंग और कृष्ण की बंसी

मीरा के ही साथ है, भक्त भगवान के आंगन में नाचे हैं, किंतु प्रेममयी मीरा ने तो भगवान को अपने साथ नचा डाला है, और उसकी बाँसुरी में अपनी साँस फूंक दी है।

मीरा ने तो समूचे मध्ययुग को चुनौती दी है, लेकिन उसने किसी नये धर्म, नये पंथ का कोई निर्माण नहीं किया। मीरा के कार्यक्षेत्र (राजस्थान, ब्रज अथवा काठियावाड़) में मुझे कोई मीरा-पथ नहीं मिला। उसे कोई पंथ बनाने की फुरसत ही कहाँ थी? जो व्यक्ति पत्थरों में रास्ता बना रहा हो, काँटों पर चल रहा हो, अहर्निश जिसका जीवन संघर्षरत हो, जिसको प्रेम की तन्मयता के अलावा अन्य कोई भाव ही नहीं हो, वह क्या पंथ बनायेगा? उसका तो प्रत्येक पद ही चुनौती है।

मीरा ने समूचे भक्ति-आंदोलन को प्रभावित किया है। इतना बड़ा आंदोलन' पूरब-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण भारतवर्ष में फैला हुआ यह भावना-समुद्र इस महान नारी द्वारा प्रभावित है। समूचे भक्ति-आंदोलन में मीरा ही एक ऐसी स्त्री है, जिसने भक्ति को मर्यादा दी है और चुनौती भी दी है। मीरा के पद, काल और स्थान को लाँघकर वहाँ की जनता के हृदयहार बन गये हैं। वह गुजरात में व्याप्त है, सुदूर पूर्व बंगाल मीरा को अपनाने के लिए व्याकुल है, दक्षिण भारत में भी मीरा के पद लोकप्रिय हैं। पूरा देश मीरा को अपनी समझता है। यही मीरा की महत् व्यापकता का एक तथ्य है। उसको अपनाने के लिए संपूर्ण देश तत्पर है, क्योंकि उसके पद भारतीय जनता ने आत्मसात् कर लिये हैं। इसलिए मीरा संपूर्ण देश की पवित्र धरोहर है, देश की संपदा है, भारत की गौरवान्वित भक्त महिला है।

मीरा की प्रेम साधना अनूठी है, एकाकी है, अद्वितीय है। वह आकाश की तरह व्यापक है। उसमें जौहर है, संघर्ष है, ज्ञान है, विज्ञान है, योग है, साधना है। सभी सद्गुणों का मीरा में समावेश है। उसके मधुर पदों में सभी भाव, अनुभव, भावनाओं के दर्शन होते हैं।

सभी साधना पद्धतियों को पार करने के पश्चात् जो दिव्य एवं अलौकिक , विशुद्ध आनंद की उपलब्धि होती है, उसका रसास्वादन आप मीरा के प्रत्येक पद से सहज कर सकते हैं। मैं बंगाल गयी थी, वहाँ मैंने बाऊलों के गीत सुने, जिनमें भी मीरा के गीतों की प्रतिध्वनि सुनी है। मैंने उनको मीरा के कुछ पद सुनाये तो वे नाचने लगे। कल्पना कीजिए, मीरा के पद कितना समय और कितना भूगोल लांघ चुके हैं। मीरा को मध्ययुग में पाषाणी सामंतशाही प्राचीरों में कारागस्त रखने का प्रयत्न किया गया था, किंतु महान ओजस्वी इस प्रेम-दिवानी मीरा के स्वर लगभग साढ़े चार-सौ वर्षों के बाद भी किले की दीवारों को फोड़कर समूचे देश के भक्तों के कंठों और हृदयों में प्रतिध्वनित हो रहे हैं। यह कोई छोटा जादू नहीं है। वह कौन सी शक्ति है, जो सारे देश में इतने वर्ष गुज़र जाने के बावजूद भी आज व्याप्त है?

पवित्र भाव की प्रेममयी भावना ही मीरा का प्रसाद है। मैं कहती हूँ मीरा ही राधा है, यानी वह ऐसी राधा है, जो कृष्ण से एक भी और भिन्न भी है।

निश्चित रूप से मीरा शाश्वत नारी की मातृशक्ति है। इसीलिए मीरा के गीतों में सृजन ध्वनि अभिव्यक्त हो रही है , जो प्रत्येक हृदय को छू लेती है, और मंगल आनंद एवं प्रेम का उद्भव करने में समर्थ है।

शौर्य के बादलों में मीरा का भक्तिजल है। जिस बादल में पानी नहीं होता उससे बिजली भी पैदा नहीं हो सकती है। पानी भरा बादल ही बिजली के दाह को सँभाल सकता है।

मीरा के व्यक्तित्व के द्वारा इस धरती को साधना, प्रेम और भक्ति का संबल मिला है।

(मीराश्रद्धांजलि से)

('मैत्री' से साभार)

पूर्वप्रकाशित कर्मधारा-1988, अंक-2

"लेकिन इन मानव रुपी सत्ताओं को उनके भंयकर मतिभ्रम से खींच लाने के लिए जिसमें वे डूबे हुए हैं आकण्ठ आवश्यकता है कहीं अधिक शक्ति, सामर्थ्य, उदात्त और उच्चतम प्रकाश की अनिवार्यता है कितनी दुर्लभ अविजित दिव्य रुप में मधुर पराक्रम की। स्वार्थ सिद्धि के लिए किए जा रहे इनके कठोर संघर्षो से, क्षुद्र और मूर्खतापूर्ण लुटियों से इन्हें छुड़ाने के लिए इन्हें इस अन्ध भंवर से खींच लाने के लिए जिसकी धोखेबाज चमक ने छिपा रखा है अपने पीछे कितनी अधिक जरूरत है श्रम-साधना की? और फिर हे स्वामी उन्हें मोड़ देना होगा तुम्हारी विजयी समन्वयता एवं शान्ति की ओर।"

श्रीमाँ

दिव्य युद्ध

श्री अरविन्द का मंदिर

श्री अरविन्द के मंदिर के निर्माण के लिए विस्तृत योजनाएँ और निर्देश निश्चित रूप से माँ से प्राप्त हुए थे। लेकिन इसने मुझे चकित कर दिया और मुझे सबसे ज्यादा बेचैन कर दिया। मुझे इस तरह के नाजुक काम का कभी कोई ज्ञान या अनुभव नहीं था।

अगली सुबह जब मैं मेडिटेशन हॉल को धो रहा था और पोंछ रहा था जो कि मेरी रविवार की दिनचर्या थी एक सज्जन, भक्ति और मुस्कुराते हुए चेहरे के साथ प्रवेश किया। यह आश्चर्य की बात थी। मैंने उसे गले से लगाया और बैठाया। वे पहली बार आश्रम आए थे। मैंने उससे पूछा कि वह यहाँ कैसे आया था। उन्होंने अनायास ही कहा कि वह मुझे मेरे आश्रम जीवन में देखने के लिए तरस रहे थे, और आंखें बंद करके बस मेरे पास ध्यान में बैठ गए।

वह केंद्रीय लोक निर्माण विभाग में कार्यरत एक मित्र था।

काम के प्रति समर्पण, सत्यनिष्ठा और बड़प्पन के कारण मैं हमेशा उनसे प्यार करता था और उनका सम्मान करता था। उसका नाम पूनम चंद था।

वह दो घंटे से अधिक समय तक ध्यान हॉल में अपने शरीर को ध्यान में रखकर बैठे रहे। इसने मुझे और चौंका दिया। जब वे ध्यान से बाहर आए तो मैंने उनसे पूछा कि उन्होंने ध्यान की यह कला कहाँ से सीखी है, क्योंकि मैं कभी कल्पना नहीं कर सकता था कि विशेष रूप से सी.पी.डब्ल्यू.डी. में एक सरकारी कर्मचारी तपस्या, मध्यस्थता और समाधि के लिए समर्पित हो सकता है। उसने मुझे बताया कि वह अपने घर में प्रतिदिन कई घंटे ध्यान कर रहा था और वह बहुत जल्दी उठने वाला था। यह सब जानकर मुझे बहुत खुशी हुई।

अब मैंने उनसे कहा कि उन्हें मेरी समस्या के समाधान के लिए भगवान ने भेजा है और उन्हें मंदिर की योजनाएं और चित्र दिखाए जो माता से प्राप्त हुए हैं। उन्होंने तुरंत कहा कि यह उनका काम था क्योंकि दिल्ली में सभी संगमरमर के स्मारकों को क्रियान्वित करने के लिए वह जिम्मेदार थे। उन्होंने मुझे आश्वासन दिया कि वह जिम्मेदारी लेंगे और शुरू से अंत तक मंदिर के निर्माण को अंजाम देंगे। क्या जादू और चमत्कार है।

उसने सभी योजनाओं को छीन लिया और सीधे जयपुर, राजस्थान के पास मकान से उचित लोगों को बुलाया, जो इस तरह के संगमरमर स्मारक का काम कर रहे थे और जो उनके विश्वास में थे और पूरी तरह से उनके प्रभाव में थे। उन्होंने उन्हें पूरे निर्देश और निर्देश दिए और सभी शुल्क, नियम और डिलीवरी के समय आदि का निपटारा किया।

व्यवस्था इतनी सही थी कि तीन महीने के भीतर पूरे मंदिर के लिए सभी गढ़े हुए टुकड़े ट्रकों में तकनीशियनों के साथ मौके पर ही मंदिर को इकट्ठा करने के लिए प्राप्त किए गए थे। राय साहिब पूरन चंद के निर्देशन और देखरेख में एक महीने के भीतर मंदिर को इकट्ठा किया गया था।

केंद्र में घन बहुत भारी था। इसे विशेषज्ञ और कुशल मजदूरों की मदद से क्रेन द्वारा उठाया गया था, जिन्हें निर्माणाधीन सुप्रीम कोर्ट भवन से व्यवस्थित किया गया था।

जब मंदिर पूरी तरह से तैयार हो गया, तो संयोग से मैंने देखा कि घन के चारों तरफ श्री अरविन्द के प्रतीकों को गलत तरीके से उकेरा गया था। इसने मुझे गंभीरता से झकझोर दिया। अब घन को नहीं उठाया जा सकता था और प्रतीकों को फिर से तराशा नहीं जा सकता था क्योंकि घन जमीन में दो फीट गहरा चला गया था और सीमेंट कंक्रीट में मजबूती से लगा हुआ था। मैंने महसूस किया कि सभी प्रयास बेकार हो गए थे क्योंकि क्यूब को किसी भी मामले में बदलना था जो एक कठिन और भयानक काम था। मैं अपने आप में सामंजस्य नहीं बिठा पा रहा था कि यह कैसे किया जा सकता है।

अगली सुबह मैंने राय साहब पूरन चंद को यह समझाया और उन्होंने मुझे दिलासा दिया और आश्वासन दिया कि क्यूब को टुकड़ों में तोड़कर खोदा जाएगा और मकराना में सही और प्रामाणिक प्रतीकों के साथ नया क्यूब फिर से तराशा जाएगा।

मेरे मन की व्यथित अवस्था और मेरे हृदय की पुकार माँ तक पहुँची। ठीक उसी समय जब हम एनीमेशन में इस सब पर मौके पर ही चर्चा कर रहे थे, काफी चमत्कारिक रूप से माता से एक लंबा तार प्राप्त हुआ जिसमें कहा गया था कि अवशेष क्यूब के नीचे रखे जाएंगे, न कि क्यूब के नीचे कमल के नीचे, जैसा कि पहले निर्देशित किया गया था। अब सारी चिंता और दुख दूर हो गए थे क्योंकि किसी भी हालत में क्यूब को तोड़कर अवशेषों को उसी के नीचे रखने के लिए बाहर निकाला जाना था।

नए घन के लिए आदेश और निर्देश दिए गए थे जो मकराना में फिर से सही प्रतीकों के साथ बनाए गए थे। क्यूब को तुरंत प्राप्त कर लिया गया था और नीचे अवशेष के साथ श्राइन में रखा गया था।

इसके साथ ही दैवीय युद्ध का दूसरा चरण समाप्त हो गया। लेकिन ऐसा लगता है कि यह लड़ाई तब तक शाश्वत है जब तक कि चेतना में बदलाव नहीं आ जाता।

सच्चा भारत: श्री माँ की अन्तर्दृष्टि

डॉ.जे.पी.सिंह
चेयरमैन
श्रीअरविन्द सोसाइटी
उत्तर प्रदेश एंव उत्तराखण्ड

मीरा अल्फासा का जन्म 21 फरवरी 1878 को पेरिस में हुआ था। जन्म से कुछ वर्षों तक यह नास्तिक थीं परन्तु आगे चलकर बाल्यावस्था में ही उनकी दृष्टि आस्तिकता से भरपूर हो गयी। 29 मार्च,1914 को पण्डिचेरी (पुदुच्चेरी) आकार प्रथम बार श्रीअरविन्द से मिलीं। 24 अप्रैल 1920 में पुन: वह पाण्डिचेरी आयीं तब से हमेशा वह भारत में ही रहीं,उन्हीं मीरा अल्फासा को कालान्तर में श्रीअरविन्द ने मदर(MOTHER) कहा और वह श्रीमाँ के नाम के प्रचालित हो गयीं। भारत उनकी कर्म भूमि थी। वह अन्तर्दृष्टि सम्पन्न थीं।

एक बार श्री मां से एक सुस्पष्ट प्रश्न पूछा गया था- "यदि आपसे संक्षेप में केवल एक वाक्य में सार रुप में भारत के विषय में अपनी अन्तर्दृष्टि बतलाने को कहा जाये तो आपका क्या उत्तर होगा?" श्रीमाँ का उत्तर था- "भारत की सच्ची नियति है जगत का गुरु होना" श्रीमाँ की यह अन्तर्दृष्टि भारत के सत्य स्वभाव का रहस्योदघाटन कल के जगत के लिए भारत की महान एवं अद्वितीय भूमिक के स्पष्ट दर्शन और चिन्ताग्रस्त मानवता के लिए उनके आश्वासन को लौकिक जीवन में मानवादर्शो को पूरा करने के लिए उनके अमोघ वचन को तथा इस पावन भूमि के निवासियों के लिए निर्दिष्ट महान मिशन को व्यक्त करती है। इनके अतिरिक्त कुछ और भी इस अन्तर्दृष्टि में है जो हमारी चेतना के विकास के साथ-साथ समझ में आ जायेगी।

यहाँ हमें यह जान लेना चाहिए कि भारत से अभिप्राय न तो निश्चित राजनैतिक परिसीमाओं के भीतर भौगोलिक भूखण्ड है और न उस भूखण्ड में रहने वाले जनसाधारण से है जिसका सामाजिक, आर्थिक ढांचा और निश्चित तरीकों या बदलती नीतियों वाली सरकार है। इसका अर्थ न तो विद्यमान परम्पराओं या चिरकाल रीति रिवाजों का समुच्चय ही है जिनके कोई न तो पहलू हों। हमें भारत को ऐसी 'सत्ता' के रुप में समझना होगा सब तो है ही लेकिन जो सहज रुपेण इनकी संचालिका है। यह 'सत्ता' इस देश के लोगों और उनके इतिहास के रुप में मूर्तिमान और इनके माध्यम से अपने को अभिव्यक्त करती है।

15 अगस्त, 1947 को "भारत की आत्मा" के प्रति श्रीमाँ का यह आवाहन आज भी ताजा है- "ओ भारत की आत्मा, ओ हमारी माँ, जिसने अत्यन्त अन्धकारपूर्ण निराशा और अवसाद के दिनों में भी हमारा, अपनी सन्तान का त्याग नहीं किया, तब भी नहीं जब उन्होंने तेरी वाणी अनसुनी कर दी और मुंह फेर लिया, अन्याय प्रभुओं की सेवा में लग गये और तुझे अमान्य कर दिया। अब जब वे जाग गये हैं और स्वतंत्रता के इस नवप्रभात में तेरा आनन प्रकाश से देदीप्यमान है, इस महान मुहूर्त में हम तुझे प्रणाम करते हैं हमें मार्ग दिखा कि हम सदा महान आदर्शों के पक्ष में खड़े रहें और अध्यात्म प्रधान जीवन के नेता के रुप में विश्व के अखिल लोक समुदायों के मित्र और सहायक के रुप में उन्हें तेरी मंगल मूर्ति का दर्शन करायें।"

"हमारी साधारण दुनियावी मनोवृत्ति और वस्तुओं को ऊपर-ऊपर से देखने की दृष्टि को भारत की आत्मा का ऐसा बिम्ब तथा इस तरह के आवाहन की ऐसी शैली अधिक से अधिक काव्यात्मक भाव प्रतीत होती है—एक देश प्रेम की भावना ने देश का उसकी भूमि, पर्वतों, सरिताओं और वनों का मानवीकरण कर देती है। लेकिन अब समय आ गया है कि सतही मानसिकता गंभीरतर अन्तर्दृष्टियों कि ओर खुले और प्राप्त सत्यों की उपल्बधि के लिए उठ खड़ी हो।"

श्री अरविन्द के शब्दों में "भारत की नियति का सूर्य उदित होगा और सारे भारत को अपने प्रकाश से भर देगा।" यह भारत को, एशिया को और सारे विश्व को आप्लावित कर देगा। "भारत स्वयं को संभाल रहा है और इस समुत्थान में हम को - भारत माता के बालकों को उसकी आध्यात्मिक प्रतिमा को समझना है जो कि महान भविष्य की ओर संसार का नेतृत्व और पथ प्रदर्शन करेगी।"

सच्चे भारत के बारे में श्रीमाँ की कल्पना मात्र वह नहीं है जिसे उन्होंने देखा और हमारे समक्ष प्रकट किया है। यह वह भी है जिसके लिए उन्होंने कृपापूर्वक और परिश्रम पूर्वक कार्य किया है। उनका प्रेरक पथ-प्रदर्शन अब भी जारी है, उनका निर्देशन अब भी यथावत है।

आत्मा के रुप में और विश्व के आध्यात्मिक नेतृत्व हेतु उसकी प्रतिभा के रुप में भारत की चर्चा व्यावहारिक बुद्धि के लोगों को कोरी अव्यवहारिक प्रतीत होगी विशेष रुप से सामाजिक-अर्थिक जीवन की बहुविध समस्याओं के संदर्भ में। जब तक हम आध्यात्मिकता को परलोकवादिता समझते रहेंगे और जैसा कि कुछ शताब्दियों से परलोक सम्बन्धी या जगत का निषेध करने वाला स्वर निश्चय ही प्रबल रहा है ऐसा सोचना स्वाभविक है। श्री अरविन्द एवं श्री माँ के आलोक में जीवन का निषेध करने वाली मनोवृत्तियाँ आध्यात्मिकता के लिए अनावश्यक ही नहीं बल्कि अहितकर भी हैं। श्रीमाँ का प्रबोधन है, "सच्ची आध्यात्मिकता जीवन का त्याग करने में नहीं बल्कि उसे सर्वांग पूर्ण बनाने में है - इतना सम्पूर्ण कि वह भागवत पूर्णता की सधर्मा हो जाये। भारत को विश्व के समक्ष इसी का उदाहरण प्रस्तुत करना है।" श्रीमाँ की अन्तर्दृष्टि श्रीअरविन्द की अर्न्तदृष्टि के साथ एक रुप है श्रीअरविन्द का कथन कि "भारत अपना सर्वोत्तम रुप से विकास और मानवता की सेवा स्वंय भारत होकर ही कर सकता है।"

मानवता के भविष्य के संदर्भ में श्रीमाँ की भारत विषयक अन्तर्दृष्टि ठीक वही है जो श्रीअरविन्द के इन शब्दों में प्रकट हुई है, "भारत समस्त राष्ट्रों का गुरु है वह गंभीरता व्याधियों में मानवता का चिकित्सा है। उसकी नियति में है एक बार पुन: विश्व के जीवन का नवगठन और मानवता का पुनरुद्धार।"

श्रीमाँ हमें भारत का अन्तदर्शन और मिशन ही नहीं दिखलाती, वे हमारी नियति की संसिद्धि की दिशा में प्रभावी कदम उठाने के लिए निर्देश और आदेश देती हैं। यह पूछे जाने पर कि भारत की आत्मा को कैसे पाया जाये, उनका निर्देश था, "अपने चैत्य पुरुष के प्रति सचेतन होओ! तुम्हारा चैत्य पुरुष भारत की आत्मा से पूर्णरुपेण सम्बद्ध हो जाये और सेवाभाव से इसकी अभीप्सा करे और यदि तुम सच्चे हो तो सफलता मिलेगी।"

एक संदेश में उनकी वाणी है "भारत ही वह देश है जहाँ चैत्य सत्ता के धर्म का शासन चल सकता है और चलना चाहिए और आज उसका समय भी आ गया है इसके सिवा इस देश के जिसकी चेतना दुर्भाग्यवश एक

विदेशी सत्ता की अधीनता और प्रभाव में रहने के कारण विकृत हो गई है किन्तु इस सबके बावजूद जिसके पास एक अनुपम आध्यात्मिक विरासत है, ऐसे इस देश के पुनरुद्धार का यही एक मात्र उपाय है।" वैसे सूत्रात्मक ढंग से उसकी सच्ची प्रतिमा के अनुकूल भारत की भूमिका बतलाती है-

"दुनिया को यह सिखलाना कि यदि यह आत्मा की अभिव्यक्ति नहीं बनता तो भौतिक तत्व असत्य एवं असमर्थ है।"

"भारत का भविष्य बिल्कुल स्पष्ट है। भारत विश्व का गुरु है। विश्व की भावी संरचना भारत पर ही निर्भर है। भारत सरकार को चाहिए कि वह इस क्षेत्र में भारत को जो करना है उसके महत्व को समझे और अपनी योजना तदनुसार बनाये।"

यदि हम ध्यानपूर्वक देखें तो देख सकते है कि श्रीमाँ ने सच्चे भारत की अपनी अन्तर्दृष्टि को केवल व्यक्त ही नहीं किया है, बल्कि समय-समय पर अपने व्यवहारिक संकेतों को शक्ति से आदेशित किया है जिसका परिणाम अवश्यंभावी है। उदाहरणार्थ यहाँ भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री को 6 अक्टूबर 1969 को दिए गये श्रीमाँ के संदेश उदधृत हैं-

"भारत को भविष्य के निर्माण का कार्य करना चाहिए और इसमें उसे पहल करनी चाहिए इस तरह दुनिया में अपना सही स्थान पुन: प्राप्त कर लेगा। बहुत काल से शासकों की आदत विभाजन और विरोध पैदा करके शासन करने की रही है।

समय आ गया है कि जब शासन एकता, पारस्पारिक सदभाव और सहयोग के रास्ते किया जाय।सहयोगी चुनने में कोई मनुष्य किस दल का है इसकी तुलना में उस मनुष्य का स्वकीय मूल्य अधिक महत्व रखता है।

किसी देश की महानता इस या उस दल की विजय पर नहीं बल्कि सभी दलों के सुमेल पर निर्भर करती है।"आइये हम भगवती माता, भारत की आत्मा-भगवती भारती का आवाहन करें।

"मुझे समस्त अहं भाव से छुटकारा दिलाओ, नम्र एवं सच्चा बनाओ। स्वामी! अत्यन्त विनीत भाव से मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि मुझमें कुछ भी जाने-अनजाने आपके पवित्र अभियान में संशय न डाल सकें, मैं किसी भी अन्य प्रभाव के द्वारा विभ्रान्त न हो जाऊँ।"

श्रीमाँ

क्षमा का आदर्श

- श्रीअरविंद

(मूल बंगला रचना का हिन्दी अनुवाद)

चाँद धीर गति से मेघ के अंतराल में लुकता - छिपता , तिरता चला जा रहा था । नीचे , कलकल करती , समीर से सुर मिलाती , नाचती , बलखाती नदी बह रही थी । पृथ्वी का सौन्दर्य अपूर्व हो उठा था , ज्योत्सना और अंधकार के मिलने से ।

चारों ओर ऋषियों के आश्रम एक - एक आश्रम नन्दन वन को लजा रहा था । पुष्पित तरु लताओं से घिरी ऋषि कुटी एक अनुपम श्री से शोभित थी ।

एक दिन ऐसी ही ज्योत्सना पुलकित रात्रि में महर्षि वशिष्ठदेव अपनी सहधर्मिणी अरुंधती से कह रहे थे " देवी , जाओ , ऋषि विश्वामित्र से थोड़ा नमक मांग लाओ । "

इस उक्ति से विस्मित हो अरुंधति देवी ने पूछा -- " प्रभु , यह आपकी कैसी आज्ञा। मैं कुछ भी नहीं समझ पा रही। जिसने हमें शत पुत्रों से वंचित किया उसी.....

इतना कहते -कहते देवी बिलखने लगी । सारी पूर्ण स्मृतियाँ जाग उठीं । वह अपूर्व शान्ति का आलय, गंभीर हृदय व्यथित हो उठा। वे कहने लगी- " मेरे शत पुत्र चाँदनी रात में वेदगान करते हुए विचरते थे। मेरे सौ - के - सौ पुत्र वेदविद् एवं ब्रह्मनिष्ठ थे । मेरे ऐसे पुत्रों को उसने मार डाला और आप मुझे उसके यहाँ नमक मांग लाने के लिए भेज रहे हैं । मैं किंकर्तव्यविमूढ़ हो गयी हूँ । "

धीरे - धीरे ऋषि का श्रीमुख ज्योति से चमकने लगा और सागरोपम हृदय से एक वाक्य फूटा- " देवी , मैं उस से स्नेह जो करता हूँ । "

यह सुन अरुन्धती और भी विस्मित हुई । बोली- यदि आप उसे चाहते हैं तो उसे ब्रह्मर्षि कहने से तो सारा बखेड़ा चूक गया होता और मुझे अपने सौ पुत्र से वंचित न होना पड़ता । "

ऋषि के मुख पर एक कांति विराज रही थी। बोले-" उसे स्नेह करता हूँ तभी तो उसे 'ब्रह्मर्षि' नहीं कहा। मैंने उसे ' ब्रह्मर्षि ' संबोधित नहीं किया है इसीलिए उसके ब्रह्मर्षि होने की आशा है।"

आज विश्वामित्र क्रोध से ज्ञानशून्य हैं। अब और उनका मन तपस्या में नहीं लग रहा। उन्होंने संकल्प किया है : आज यदि वशिष्ठ ने उन्हें ब्रह्मर्षि नहीं कहा तो उनके प्राण लेकर ही छोड़ेंगे। संकल्प को कार्यान्वित करने के लिए हाथ में तलवार लिए कुटी से बाहर हुए ।

वशिष्ठदेव की कुटी के पास जा वे रुक गये । खड़े - खड़े वशिष्ठदेव की सारी बातें सुनी । मुष्टिबद्ध तलवार हाथ में शिथल पड़ गई । सोचने लगे , क्या किया । हाय , अनजाने मैंने कितना अन्याय किया । अनजाने मैंने किसके निर्विकार हृदय को व्यथा पहुंचाने की कुचेष्टा की ।

हृदय में सौ - सौ बिच्छूओं के डंक की यंत्रणा अनुभव होने लगी। हृदय अनुताप से दग्ध होने लगा । दौड़े और जाकर गिर पड़े वशिष्ट के पाद प्रांत में। कुछ पल तो उनके मुंह से कोई शब्द ही न निकला । फिर बोले " क्षमा कीजिये । किन्तु मैं तो क्षमा मांगने के योग्य भी नहीं। " गर्वित हृदय और कुछ न बोल सका।

पर वशिष्ठ ने क्या किया?

उन्होंने दोनों हाथों से विश्वामित्र को उठाते हुए कहा- "उठो", ब्रह्मर्षि उठो! "

द्विगुणित लज्जित हो विश्वामित्र ने कक्षा- "प्रभु क्यों लज्जित कर रहे हो ?"

वशिष्ठ ने उत्तर दिया- " मैं कभी झूठ नहीं बोलता आज तुम ब्रह्मर्षि हुए । आज तुमने अभिमान का त्याग किया। आज तुमने प्राप्त किया ब्रह्मर्षि पद। "

विश्वामित्र ने कहा- "आप मुझे ब्रह्मज्ञान की शिक्षा दीजिये। "

"अनंतदेव के पास जाओ। वे ही तुम्हे ब्रह्मज्ञान की शिक्षा देंगे" “वशिष्ठ देव ने उत्तर दिया ।

जहाँ अनंत देव पृथ्वी को अपने मस्तक पर धारण किये हुए हैं , विश्वामित्र वहाँ गये । अनन्तदेव ने कहा- " मैं तुम्हें ब्रह्मज्ञान की शिक्षा दे सकता हूँ अगर तुम इस पृथ्वी को अपने सिर पर धारण कर सको । "

तपोबल के गर्व से चूर विश्वामित्र ने कहा- आप पृथ्वी को अपने सिर पर से उतारिए , मैं उसे धरण करता हूँ । " शून्य में चक्कर काटते - काटते पृथ्वी गिरने लगी ।

विश्वामित्र चिल्लाये- " अपनी सारी तपस्या का फल अर्पण करता हूँ । पृथ्वी, तू रुक जा पृथ्वी फिर भी स्थिर न हुई ।

ऊंची आवाज मैं अनन्तदेव ने पुकारा " विश्वामित्र , अब तक तुमने इतनी तपस्या नहीं की है जिसके बल पर पृथ्वी धारण कर सको । क्या कभी साधु संग किया है ? किया है तो उसका फल अर्पण करो । "

" कुछ पल वशिष्ठ का साथ था । "

उसी का फल अर्पण करो । "

" अच्छा , उसी का फल अर्पण करता हूँ । "

और पृथ्वी धीरे - धीरे स्थिर होने लगी ।

तब विश्वामित्र ने कहा- "अब मुझे ब्रह्मज्ञान दीजिये। "

अनन्तदेव बोले- " मूर्ख विश्वामित्र , जिनकी मुहूर्त भर की संगति के फल से पृथ्वी स्थिर हो सकती है उन्हें छोड़ नम मेरे पास आए हो बहाज्ञान पाने के लिए ? "

विश्वामित्र तिलमिला उठे। सोचने लगे: क्या वशिष्ठ देव ने मेरी प्रतारण की?

अविलम्ब उनके पास जा पहुँचे और बोले-"आपने क्यों मेरी प्रतारणा की?

वशिष्ठदेव ने अति धीर गंभीर भाव से उत्तर-"यदि उस समय मैंने तुम्हें ब्रह्मज्ञान की शिक्षा दी होती तो तुम उस पर विश्वास न करते, पर अब करोगे।"

वशिष्ठदेव ने विश्वामित्र को ब्रह्मज्ञान दिया।

भारत में ऐसे थे ऋषि, ऐसे थे साधु और ऐसा था क्षमा का आदर्श। तपस्या का ऐसा प्रताप था कि सारी प्रथ्वी का भार धारण किया जा सकता था। भारत में पुन: ऐसे ऋषियों का जन्म हो रहा है जिनके प्रभाव के सामने प्रचीन ऋषियों की ज्योति हतप्रभ हो जायेगी; जो पुन: भारत को अतीत के गौरव से अधिक गौरव प्रदान करेंगे।

"प्रभु! आपने हमारी गुणवत्ता के परीक्षण करने का निश्चय किया है और हमारी सचाई को अपनी कसौटी पर परख रहे हो, हम पर कृपा करना कि हम इस परीक्षण पर और अधिक महत्तर एवं निर्मलता से खरे साबित हों।"

-श्रीमाँ

योग का मार्ग

योग का अर्थ है ऐक्य और योग का समस्त उद्देश्य है मानव अन्तरात्मा का परम सत्ता के साथ, मानवजाति की वर्तमान प्रकृति का शाश्वत, परम या दिव्य प्रकृति के साथ ऐक्य।

ऐक्य जितना अधिक बड़ा होगा योग भी उतना ही बड़ा होगा, ऐक्य जितना पूर्ण होगा, योग भी उतना ही पूर्ण होगा।

परम सत्ता के बारे में विभिन्न कल्पनाएं हैं और हर कल्पना के साथ मेल खाता हुआ एक योग सम्प्रदाय है जिसके अलग विचार हैं और जिसकी अलग साधना है। परन्तु ये पूर्ण नहीं आंशिक पद्धतियाँ हैं या यूं कहें कि वे अपने-आपमें तो पूर्ण हैं परन्तु सारी मानव सत्ता और प्रकृति को अपने अन्दर नहीं समेटतीं। उनमें से अधिक जीवन से दूर ले जाती हैं और केवल उन्हीं थोड़े-से लोगों के लिए उपयोगी हैं जो मानव जीवन से दूर जाने के लिए प्रवृत्त हैं और सत्ता की किसी अन्य अवस्था के आनन्द की खोज में हैं। सर्व सामान्य मानव जाति के लिए वस्तुत: इस प्रकार के योग का कोई सच्चा संदेश नहीं हैं। पूर्णयोग वह होगा जो जगत् के अन्दर भगवान को स्वीकार करे, सभी सत्ताओं के साथ ऐक्य स्वीकारे, और मानव जाति के साथ एकात्मता को स्वीकारे जो जीवन और अस्तित्व को भागवत चेतना से भर दे और न केवल व्यष्टिगत मनुष्य का उत्थान ही करे बल्कि, मानव जाति को समग्र पूर्णता की ओर ले जाये।

-श्रीअरविन्द

हे अद्भुत! कृपा कर हमारी अभीप्सा को सदा ही अधिकाधिक गहन और हमारे विश्वास को अधिकाधिक गुंजायमान होने दे। हमारी आस्था को उत्तरोत्तर परिपूर्ण बना, तू सर्व-विजयी है।

-श्रीमाँ

आत्मसमर्पण

(सरेंडर)

श्रीअरविन्द(अनुवाद रामधारी सिंह दिनकर)

तुम प्रकृति हो, सूक्ष्म आत्मा हो; असली निवासी तुम हो,
मैं तो मात्र गेह हूँ।
प्रभो, मैं तुम्हारा साधन और यंत्र हूँ।
ऐसा करो कि मेरा माल्य अस्तित्व
तुम्हारी महिमा से मिलकर
एकाकार हो जाय।
मैंने अपना मन तुम्हें दे दिया है,
जिससे तुम्हारा मन इसमें नहर खोदे।
मैंने अपनी इच्छा तुम्हारे चरणों पर धर दी है,
जिससे वह तुम्हारी इच्छा बन जाय।
मेरे किसी भी अंश को पीछे मत छोड़ो,
रहस्यपूर्ण और अनिर्वचनीय ढंग से
अपने साथ मुझे एक होने दो।
तुम्हारा प्रेम, जो निखिल विश्व के प्राणों में

स्पन्दन भरता है,

उसके साथ मेरे हृदय को स्पन्दिन होने दो।
प्रथ्वी के उपयोग के लिए तुम
मेरे शरीर को इंजिन बनाना।
मेरी धमनियों और शिराओं में
तुम्हारे आनन्द की धारा बहेगी।
तुम्हारे शक्ति जब छूटेगी,

मेरे विचार प्रकाश की सीमा बनेंगे।
ऐसा करो कि मेरी आत्मा निरन्तर
तुम्हारी पूजा में लीन रहे।

और प्रत्येक आकार तथा प्रत्येक आत्मा के तुम्हारा दर्शन करे।

रूपान्तरण

(ट्रान्सफार्मेशन)

श्रीअरविंद (अनुवाद रामधारी सिंह दिनकर)

चलता मेरा श्वास सूक्ष्म, लयपूर्ण धार में।
अंग-अंग पूरित महान् भागवत शक्ति से।
पान किया है मैंने दिव्य, अनन्त सुधा का,
जैसे कोई पिये सुरा दानव विराट की।

काल नाट्य मेरा, स्वप्नों का भव्य प्रदर्शन।
तन का प्रति कोशाणु प्रदीपित, भासमान है।
रंध्र-रंध्र में दीपित शुभ आनन्द-शिखाएं ।

सुख-सिहरित नाड़ियाँ देह की परिवर्तित हो।
कुल्याएँ बन गयीं दूधिया, दिव्य मोद की,
उतर सकें जिनमें होकर वह प्लावन-गति से,
जो गोचर से परे तत्त्व सबसे महान है।

अब अधीन मैं नहीं रुधिर के और मांस के,
न तो प्रकृति का दास, कुटिल जिसका शासन है।
फेंक - फेंक संकीर्ण पाश इन्द्रियाँ न मुझको
अब सकती हैं बाँध मोहमय आकर्षण में ।

मापहीन हो गया दृश्य; आत्मा के सम्मुख
अब न किसी भी ओर क्षितिज-रेखा है कोई ।
तन मेरा जीवित, प्रसन्न है यंत्र देव का ।
मेरी आत्मा अमर ज्योति का महासूर्य है।

आश्रम गतिविधियाँ

12 जनवरी-

स्वामी विवेकानंद की 160 वीं जयंती को आश्रम के शिक्षार्थियों द्वारा बड़े ही उत्साह के साथ मनाया गया। इस शुभअवसर पर सभी शिक्षार्थियों को स्वामी विवेकानन्द के जीवन पर आधारित फिल्म दिखाई गई।

दोपहर 1:30 स्वामी विवेकानंद की आत्मकथा (उन्हीं के शब्दों में...)

निर्माता: श्री रामकृष्ण मठ

"एक विचार लो। उस एक विचार को अपना जीवन बनाओ; उसके सपने देखो; उसके बारे में सोचो; उस विचार पर जियो। मस्तिष्क, शरीर, मांसपेशियों, नसों, आपके शरीर का हर हिस्सा उस विचार से भरा हो, और बस हर दूसरे विचार को अकेला छोड़ दो। यही सफलता का मार्ग है, और इस तरह महान आध्यात्मिक दिग्गज पैदा होते हैं"

- स्वामी विवेकानंद

20 जनवरी

अनिल जौहर जी के इस जन्म दिन के अवसर पर आश्रम के शिक्षर्थियों द्वारा बड़े ही हर्षो उल्लास के साथ खेल प्रतियोगिता का आयोजन किया गया था।

और इस शुभ अवसर पर तारा दीदी द्वारा सभी श्रामिकों को उपहार वितरण किया गया।

और संध्या के समय-ध्यान कक्ष में-

पंडित वरुण कुमार पाल देश के मूर्धन्य संगीतकार थे। उन्होने स्लाइड गिटार जैसे साज में तरब के तारों को जोड़कर और उकी बनावट में परिवर्तन कर के उसे हंस वीणा के नाम से बनाया और दुनिया भर में बजाया।

गणतंत्र दिवस (26 जनवरी)

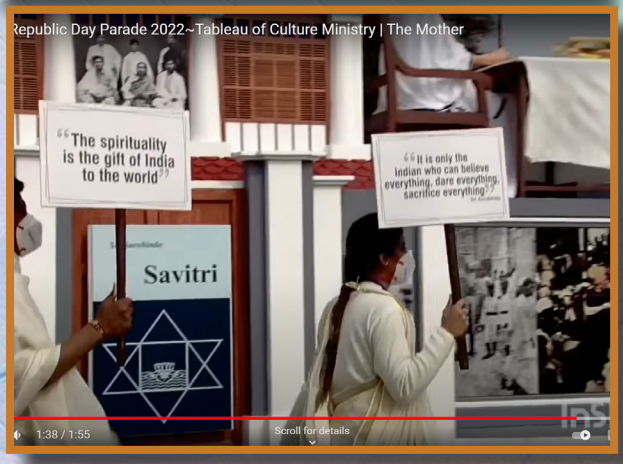

इस दिन आश्रम के सभी शिक्षारथियों को hall of joy में इण्डिया गेट पर हो रहे प्रोग्राम का सीधा प्रसारण दिखाया गया। सबसे खुशी की बात थी कि इस बार संस्कृति मंत्रालय द्वारा इण्डिया गेट पर उनकी झाँकी का प्रदर्शन किया गया। जिसको बच्चों ने बड़े ही उतसाह पूर्वक देखा।

उसके बाद देश भक्ति मूवी का आयोजन किया गया । (परमाणु)

और इस दिन हमारी आश्रम कि साधिका करूणा दीदी की पुण्य तिथि भी होती है। हमारी करूणा दीदी का संगीत आश्रम प्रांगण की अनमोल धरोहर है।

कक्ष में उनका स्मरण करते हुए संध्या के समय ध्यान कक्ष में

6:45 से 7:30 तक संगीत का आयोजन किया गया जिसमें करूणा दीदी को याद करते हुए देश प्रेम तथा भक्ति गीत प्रस्तुत किये गये

स्थापना दिवस (12 फरवरी)

12 फरवरी दिल्ली आश्रम के लिए बहुत बड़ा दिन है। इस दिन श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर द्वारा श्रीमाँ की प्रेरणा से श्रीअरविन्द आश्रम दिल्ली शाखा की स्थापना हुई। और इस बार सबसे ज्यादा खुशी का दिन था। क्योंकि संस्कृति मंत्रालय द्वारा श्रीअरविन्द की झाँकी आश्रम को सौप दिया गया और इस अवसर पर आश्रम में एक खास कार्यक्रम का आयोजन किया गया जिसका सीधा प्रसारण फेसबुक पर किया गया था।

हमारा यह कार्यक्रम शाम 4 बजे से लेकर 6 बजे तक चला

- माँ के संगीत के साथ एकाग्रता
- पवित्र भजनों के जाप के साथ आभीप्सा के दीप प्रज्वलन
- लेखक और प्रेरक वक्ता डॉ. रमेश बिजलानी जी का संबोधन
- श्री अरविन्दो की झांकी सौंपते हुए श्री गोविंद मोहन जी, सचिव, मंत्रालय का संबोधन (भारत सरकार)
- आईजीएनसीए की ओर से श्री राम बहादुर राय, अध्यक्ष, आईजीएनसीए ट्रस्ट का संबोधन,
- और इस भव्य कार्यक्रम में श्री रामेश सी. गौर, डीन प्रोफ़ेसर आईजीएनसीए, लेफ्टिनेंट जनरल डॉ. दलजीत सिंह , श्री अनिलबन गंगूली और पी.पी श्रीवास्तव जी भी उपस्थित थे।
- श्री अरविन्द की अंग्रेजी की तारा दीदी द्वारा सस्वर पाठ बन्दे मातरम् का प्रतिपादन
- डॉ. जयंती रामचंद्रन द्वारा धन्यवाद प्रस्ताव
- संध्या के समय ध्यान कक्ष में सामूहिक ध्यान का आयोजन किया गया।

मेरे प्रभु! तुमने मुझे यह सर्वोत्कृष्ट ज्ञान प्रदान किया है " हमें जीना है क्योंकि यहीं तुम्हारी 'इच्छा' है। हम मर जायेंगे क्योंकि यह भी तुम्हारी ही 'इच्छा' होगी।

श्रीमाँ

(18 फरवरी) एफ एल ओ अवार्ड ऑफ एक्सीलेंस 2022

शिक्षा की श्रेणी में समाज पर सकारात्मक प्रभाव डालने के लिए तारा दीदी को (FICCI) फिक्की द्वारा एफ एल ओ अवार्ड ऑफ एक्सीलेंस 2022 से सम्मानित किया गया |

श्रीमाँ का जन्मदिवस -21 फरवरी

इस दिन हमारे आश्रम में चारों तरफ खुशी का महौल था। आश्रम का पूरा वातावरण एक अलग ही उत्साह,उल्लास से तरंगित था। ध्यान कक्ष में संगीत चल रहा था तथा आने वाले सभी श्रद्धालुओं के लिए प्रसाद (फल) की व्यवस्था की गई थी।

पूरे दो साल बाद युवाओं द्वारा खास प्रोग्राम का आयोजन किया गया था। {hall of grace} में जिसकी व्यवस्था कि गई थी। सभी शिक्षार्थियों ने अपना अपना बहुत ही बेहतरीन योगदान दिया साथ ही

संध्या के समय आश्रमवासियों द्वारा समाधि के चारों तरफ परेड करते हुए श्रीमाँ को सलामी दी तथा वन्दे मातरम् की ध्वनि से आश्रम गूँज उठा। तथा

संध्या के समय ध्यान-कक्ष में पुन: भक्ति गीत के साथ तारा दीदी द्वारा श्रीमाँ के चार शक्तियों का सस्वर पाठ किया गया।

23 फरवरी- जयंतो पोल

11 फरवरी 2022 को जयंतो दा के आकस्मिक निधन की सूचना देते हुए हमें गहरा दुख हो रहा है (लगभग) 30 से अधिक वर्षों से वन निवास में माता की सेवा में थे और वहां शिविरों और सामान्य कार्यों से निकटता से जुड़े थे।

जयंतो दा शुरू में लगभग 30 साल पहले नैनीताल आश्रम में रॉक क्लाइम्बिंग इंस्ट्रक्टर के रूप में शामिल हुए थे और अपनी कड़ी मेहनत, पहल और समर्पण के साथ उन्होंने वन निवास साहसिक शिविरों का कार्यभार संभाल लिया था। वह पूरी तरह से शामिल, समर्पित और न केवल उसे दिए गए कार्यों को सीखने के लिए तैयार था बल्कि शिविरों और अन्य कार्यक्रमों के सुचारू संचालन के लिए आवश्यक कुछ भी नया था।

नलिन जी (जो 30 वर्षों तक वन निवास में प्रबंधक थे) सेवानिवृत्त होने तक, वे वन निवास में शिविरों, खातों को संभालने और सभी प्रशासनिक कर्तव्यों को पूरा करने के लिए पूरी तरह से प्रशिक्षित थे। उन्हें साहसिक गतिविधियाँ पसंद थीं और 56 साल की उम्र में भी, वह एक दिन में "दो बार" समूह के साथ नैना पीक जाने के लिए तैयार रहते थे, इस तथ्य के बावजूद कि यह एक कठिन ट्रेक है। जयंतो दा एक बहुत ही देखभाल करने वाले व्यक्ति थे और सभी बच्चों और बड़ों को समान रूप से प्यार करते थे। उनकी कमी खलेगी।

आश्रम परिवार